अपने नैतिक कर्तव्य

प्रवचनकार

प.पू. युगप्रमुख श्रमणाचार्य, गणाचार्य श्री 108 विरागसागरजी महाराज

Scanned with CamScanner

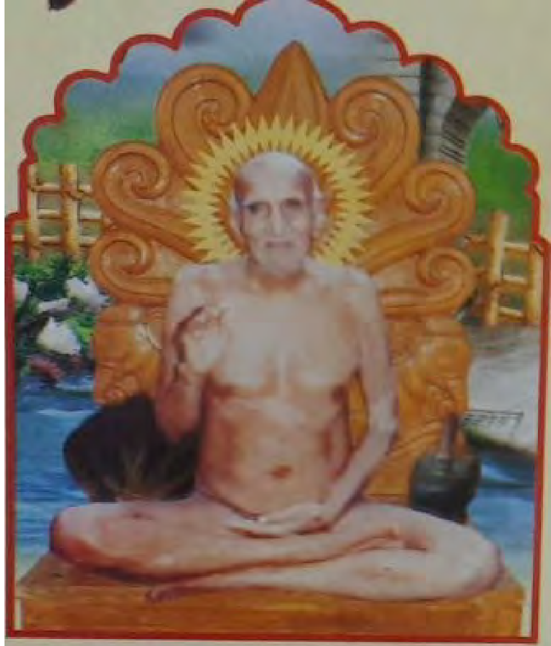

प.पू. वात्सल्य रत्नाकर आचार्य 108 श्री विमलसागरजी महाराज

प.पू. तपस्वी सम्राट आचार्य 108 श्री सन्मतिसागरजी महाराज

अपने नैतिक कर्तव्य

प्रवचनकार

प.पू. युगप्रमुख श्रमणाचार्य, गणाचार्य श्री 108 विरागसागरजी महाराज

संकलन-सम्पादन

पू. श्रमणी आर्यिका विबोधश्री माताजी

पू. श्रमणी आर्यिका विविक्तश्री माताजी

प्रकाशक/प्राप्ति स्थान

श्री सम्यग्ज्ञान दिगम्बर जैन विराग विद्यापीठ

बतासा बाजार, भिण्ड (म.प्र.)

प्रवचनकार – प.पू. युगप्रमुख श्रमणाचार्य, गणाचार्य श्री 108 विरागसागरजी महाराज की 'स्वर्णिम जयंती' वर्ष की पावन बेला पर

कृति – अपने नैतिक कर्तव्य

प्रवचनकार – प.पू. युगप्रमुख श्रमणाचार्य, गणाचार्य श्री 108 विरागसागरजी महाराज

संकलन-संपादन – पू. श्रमणी आर्यिका विबोधश्री माताजी
पू. श्रमणी आर्यिका विविक्तश्री माताजी

संस्करण – प्रथम-2012

प्रतियाँ – 1000

पुण्यार्जक – श्री रतनलाल जी कटारिया
ब्यावर (राज.)

मूल्य – 30/- रु.

प्राप्ति स्थान – श्री सम्यग्ज्ञान दिग. जैन विराग विद्यापीठ
बतासा बाजार, भिण्ड (म.प्र.)

मुद्रक – राजू ग्राफिक आर्ट, रहीम मंजिल, जयपुर
फोन : 2313339, मो.: 9829050791

जीवन बिन्दु

(प.पू. गणाचार्य श्री 108 विराग सागर जी महाराज)

पूर्व नाम	:	अरविन्द जैन (टिन्नू)
जन्म	:	2 मई, 1963, गुरुवार (वैशाख शुक्ला 9, संवत् 2020, पथरिया)
माता-पिता	:	श्रीमति श्यामादेवी जैन (समाधिस्थ आ. विशांत श्री माताजी) ब्र. श्री कपूरचंद जी जैन (संघस्थ पू. क्षुल्लक श्री 105 विश्ववंद्य सागर जी महाराज)
बहिन	:	श्रीमति मीना जैन, श्रीमति विमला जैन
भाई	:	श्री विजय कुमार, श्री सुरेन्द्र कुमार, बा.ब्र. श्री नरेन्द्र भैया जी
लौकिक शिक्षा	:	इण्टर, मध्यमा (पथरिया, श्री शांति निकेतन, दि. जैन संस्कृत विद्यालय, कटनी, म.प्र.)
क्षुल्लक दीक्षा	:	20 फरवरी, 1980 (फाल्गुन शु. 5 सं. 2036 बुद्धार, शहडोल)
नामकरण	:	पूज्य क्षु. श्री 105 पूर्ण सागर जी महाराज
क्षु. दीक्षा गुरु	:	परम पूज्य तपस्वी सम्राट आचार्य श्री 108 सन्मति सागर जी महाराज
मुनि दीक्षा	:	9 दिसम्बर, 1983 (मगसर शु. 5, वि.सं. 2040), औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
नामकरण	:	प.पू. मुनि श्री 108 विराग सागर जी महाराज
मुनि दीक्षा गुरु	:	प.पू. निमित्तज्ञानी आचार्य श्री 108 विमल सागर जी महाराज
आचार्य पद	:	8 नवम्बर, 1992 (कार्तिक शु. 13 वि.सं. 2049) रविवार, द्रोणगिरि
संयम सृजन	:	आचार्य 8, मुनि 59, आर्यिका 53, ऐलक 4, क्षुल्लक 29, क्षुल्लिका 17 तथा ब्रह्मचारी भाई-बहिनें। कुल-174

समाधि सल्लेखनायें : 39 तथा सहयोग 11

चातुर्मास : 1980 से 2012 तक क्रमशः
दुर्ग (छत्तीसगढ़), कारंजा लाड (महाराष्ट्र), कारंजा लाड (महाराष्ट्र), नागपुर (महाराष्ट्र), भावनगर (गुजरात), पाँचवा (राज.), निमाज (राज.), जयपुर (राज.), भिण्ड (म.प्र.), भिण्ड (म.प्र.), टीकमगढ़ (म.प्र.), श्रेयांसगिरि (म.प्र.), द्रोणगिरि (म.प्र.), श्रेयांसगिरि (म.प्र.), बीना (म.प्र.), ललितपुर (उ.प्र.), मढ़ियाजी (जबलपुर), भिण्ड (म.प्र.), भिण्ड (म.प्र.), भिण्ड (म.प्र.), शिखरजी (झारखंड), गया (बिहार), श्रेयांसगिरि (म.प्र.), भिलाई (छत्तीसगढ़), कारंजालाड (महा.), मूडबिद्री (कर्नाटक), मेलचित्तामूर (तमिलनाडु), उदगाँव (महाराष्ट्र), मुम्बई (महाराष्ट्र), गाँधी नगर (गुजरात), लोहारिया (राज.), अजमेर (राज.), जयपुर (राज.)

साहित्य सृजन :
(1) वारसाणुपेक्खा ग्रन्थ पर 1100 पृष्ठीय सर्वोदयी संस्कृत टीका
(2) रयणसार ग्रन्थ पर 800 पृष्ठीय रत्नत्रयवर्धिनी संस्कृत टीका
(3) अनेक शोधात्मक चिन्तनीय, बालकोपयोगी कथा, अनुवाद, गद्य, संपादित साहित्य जीवनी एवं प्रवचन साहित्य

जाप्य : लगभग 1 करोड़ 90 लाख से अधिक

व्रत : कर्मदहन, भक्तामर, णमोकार मंत्र, चारित्रशुद्धि, चौंसठ ऋद्धि, दर्शन विशुद्धि, षट्रसीव्रत, नीतिसार, वचनगुप्ति, अष्टमी चतुर्दशी नीरस, समवशरण व्रत आदि उपवास व नीरस।

तप-त्याग : दही, तेल, बेर, करोंदा, टिण्डा, जामुन, सभी हरी पत्ती, मटर छोड़ सभी फली, पपीता, कटहल, लवेडे, कद्दू, तरबूज, भिण्डी, खुरबानी, सीताफल, रामफल, फालसा, अंगीठा, आलूबुखारा, चैरी, शक्करपारा, कुंदरू, स्ट्रोबेरी आदि आजीवन त्याग।

विशेष त्याग : कूलर, पंखा, लेपटॉप, मोबाइल, हीटर, नेलकटर, सन् 1985 से, थूकने का त्याग सन् 1983 से

पंचकल्याणक : लघु वृहद् मिलाकर – 52

श्रद्धा के दो पुष्प

A philosophos says that- "A Guru or a preceptor is a suprime surprise of the Nature." without any preceptor we don't get right path.

गुरु ही प्रकृति का अनमोल तोहफा हैं। वे ही सत्पथ गमन कराते हैं। गुरु वह दीपक है, जो स्वयं जलकर सम्पूर्ण जगत को ज्ञान के प्रकाश से भर देते हैं। सारा जिनशासन जिनकी गौरव गाथा गाता है। ऐसे अध्यात्म योगी, तत्ववेत्ता, प्रज्ञापुंज, विद्याविशारद, परम पूज्य युग प्रतिक्रमण प्रवर्तक, राष्ट्रसंत, युगप्रमुख श्रमणाचार्य, गणाचार्य श्री विराग सागर जी महाराज, जिनकी प्रखर प्रज्ञा से सदैव चिंतन रूपी मोती प्रस्फुटित होते रहते हैं। वह चिंतन कभी सिद्धान्त का होता है तो कभी आगम, कभी अध्यात्म विषयक, कभी-कभी वह चिंतन नैतिक शिक्षा, शिष्टाचार, विनयाचार या लोक व्यवहार कुशलता परक होता है। प्रायः घरों में छोटी-छोटी बातों में तू-तू, मैं-मैं, वाद-विवाद होते हैं। उन समस्याओं के निरसन हेतु हमारी सकारात्मक सोच कैसी हो, इस विषय पर अपने उपदेशों का अमृत रस पूज्य गुरुदेव ने प्रदान किया।

गुरुवर के उन प्रवचनों का पूज्य श्रमणी आर्यिका विशिष्टश्री माताजी की प्रेरणा से पूज्य श्रमणी आर्यिका विबोधश्री माताजी ने संकलन तथा पूज्य श्रमणी आर्यिका विविक्तश्री माताजी ने संपादन कार्य किया और कृति का नाम **'अपने नैतिक कर्तव्य'** रखा गया।

यह कृति सहज, सरल, सुबोध शैली में रोचक, जनोपयोगी व शिक्षाओं से भरपूर है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह कृति अपने नैतिक, व्यवहारिक, सामाजिक जीवन में सफलता पाने हेतु मील का पत्थर साबित होगी। इस कृति में सम्मिलित शिक्षाएँ पाठक के मन-मस्तिष्क को शांति प्रदान करती हैं तथा जीवन जीने की नई दिशा प्रदान करती हैं। अतः जन सामान्य के लिए यह कृति बहुपयोगी सिद्ध होगी।

अंत में, जिन शासन के उदित सूर्य, श्रमण संस्कृति के उन्नायक, सरलता की प्रतिकृति पूज्य गुरुदेव ने अपना उपदेशामृत प्रदान कर हम पर जो अनुग्रह किया है, वह चिरस्मरणीय रहेगा।

पूज्य गुरुवर के स्वर्णिम जयन्ती के शुभ अवसर पर परम पिता परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि हमारे पूज्य गुरुदेव की कीर्ति दशों दिशाओं में फैले तथा उनके उपदेशों का अमृत रसपान करने का सौभाग्य हम सभी को प्राप्त हो।

त्रयभक्ति पूर्वक गुरु चरण-कमलों में, बारम्बार नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु !

– पं. श्री देव कुमार जी
मूड़बिद्री (कर्ना.)

संपादकीय

साधु-संत समाज और देश को संस्कारों से सींचते हैं यही कारण है कि जिस धरा पर उनका विचरण होता रहता है वहाँ धार्मिकता, वात्सल्यता, सहयोग, संगठन, एकता, प्रेम और आनंद बरसता है। उनके उपदेश जीवन जीने की ही नहीं मरण की भी कला सिखाते हैं।

प्रस्तुत कृति **'अपने नैतिक कर्तव्य'** प.पू. युगप्रतिक्रमण प्रवर्तक, युगप्रमुख श्रमणाचार्य, सिद्धांतरत्न, राष्ट्रसंत, गणाचार्य गुरुदेव श्री 108 विरागसागरजी महाराज के द्वारा 2005 मूडबिद्री (कर्नाटक) में हुए उन जनहितकर षट् प्रवचनों का संग्रह है जो भटकी हुई समाज व मानवता के पथ को प्रशस्त दिशा-निर्देश देते हैं। पूज्यश्री कहते हैं- मोक्ष का मार्ग मंदिर से नहीं घर से प्रारम्भ होता है जहाँ व्यक्ति जन्म से पलता-पुसता है। पहले प्रवचन में उन्होंने व्यक्ति को संबोधन दिया है कि बहुत ऊँचाई तक नहीं जा सकते, मुनि नहीं बन सकते, तो कोई बात नहीं- मोक्षमार्गस्थ नहीं तो सद्गृहस्थ बन जाओ। इस प्रवचन में विवाह की औचित्यता के परिप्रेक्ष्य में प्रकाश डाला गया है। आगे नारी के लिये श्रेष्ठ पत्नी और माता बनने के उपदेश के बाद कुलदीप यानी पुत्र के कर्तव्य, सास-बहू के मधुर संबंधों का उपाय, भ्रातृप्रेम से विश्वप्रेम इत्यादि सरल-सुबोध और हृदयग्म्य शैली में दृष्टांत आदि के द्वारा मानो चित्रित ही कर दिये हों।

अंत में ऐसे विश्वसंत, विश्वहितैषी, गुरुदेव के चरणों में कोटिशः नमोस्तु के साथ आशा करते हैं कि यह कृति जन-जन के लिये उपयोगी ही नहीं अमृत तुल्य सिद्ध होगी।

गुरु कृपाभिलाषी

श्रमणी आर्यिका विविक्तश्री

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय-वस्तु	पे.नं.
1.	मोक्षमार्गस्थ नहीं तो सद्गृहस्थ बनें	7
2.	संस्कारों की मूरत हो भारतीय नारी	17
3.	माता के कर्त्तव्य	42
4.	कुलदीपक का प्रकाश	62
5.	सुख शांति की जननी सास-बहू	82
6.	भ्रातृप्रेम से विश्वप्रेम हो	99

1. मोक्षमार्गस्थ नहीं तो सद्गृहस्थ बनें

आप मुनि नहीं बन सकते, विकारों को नहीं जीत सकते तो विद्वानों की आज्ञा है कि आपको विवाह करना श्रेष्ठ है, वासनाओं को सीमा में बाँध लेना श्रेष्ठ है।

बंधुओ ! आज हम सभी उपस्थित हुए हैं, धर्म की व्याख्या को जानने के लिए, धर्म के आधार से जीवन जीने की कला सीखने के लिये कि जीवन जीने की पद्धति कैसी हो ? और भगवान महावीर स्वामी के समवशरण के मध्य दो पात्र थे - एक ओर साधु और दूसरी ओर श्रावक (गृहस्थ)। भगवान की देशना प्रारम्भ हुई और भगवान ने देशना के माध्यम से पहला मार्ग बताया कि समता के साथ साधु के द्वारा जो साधना की जाती है, वह तरीका है मोक्षमार्ग यानि मोक्षमार्ग का सुगम रास्ता है साधु मार्ग। चूँकि बिना साधु बने मोक्षमार्ग नहीं हो सकता, सच्ची अनुभूति नहीं हो सकती। यदि देखा जाये तो सर्वश्रेष्ठ मार्ग है मुनि मार्ग। चूँकि यह संभव नहीं है कि सभी मुनि बन जायें, क्योंकि पात्रता नहीं है, सामर्थ्य और शक्ति नहीं है। इसलिए भगवान ने मध्यम मार्ग गृहस्थों का बताया कि आप मुनि नहीं बन सकते हैं, त्याग-तपस्या नहीं कर सकते हैं, गृह-कुटुम्ब-परिवार नहीं छोड़ सकते हैं, साधना की चरम अवस्था नहीं पा सकते हैं तो गृह में रहकर मानवोचित कार्य करें। जो रास्ता महापुरुषों ने दिखाया, जिस पर वे स्वयं चले, उस पर हम सभी कदम-कदम चलने का प्रयास करें।

वर्तमान में प्रकृत विषय- गृहस्थ धर्म की व्याख्या देखें तो दो भूमिकाएँ दिखती हैं जिसमें पहली व्याख्या में गृहस्थ यानि जो घर में रहे, वह गृहस्थ है। चाहे वह बालक, वृद्ध, युवा, शादीशुदा हो या बिना शादी के हो वह गृहस्थ ही है, क्योंकि अभी उसने घर के संबंधों का त्याग नहीं किया, वह अभी पारिवारिक संबंधों के बीच है। यानि संतों, मुनि, आर्यिका, त्यागियों के अलावा सभी गृहस्थ कहलाते हैं।

और दूसरे व्याख्यान को देखते हैं तो जो ग्रंथि, ग्रथित, ग्रसित है वह गृहस्थ है, क्योंकि वह परिवार की सीमा, कुटुम्ब की सीमा, घर से बँधा है। साहित्यिक भाषा में गृह का नाम चूना-मिट्टी का बना मकान नहीं, ईंट-पत्थर का बना मकान नहीं बल्कि गृह यानि पत्नी (स्त्री) उसके माध्यम से ही गृह की व्याख्या है, इसलिये कहा कि जो सीमा से बँधा हो, घर की जिम्मेदारी, बागडोर जिसके कंधे पर हो, घर की सीमाओं के अंदर हो, वह गृहस्थ है।

गूँथा है मकड़ी का जाल, जिसे स्वयं ने बनाया है, किसी दूसरे ने नहीं। उसी प्रकार आपकी दशा है- आप पहले बालक (मनुष्य) थे, क्योंकि आपकी शादी नहीं हुई थी तथा दो ही पैर थे, लेकिन शादी के बाद आप पशु हो गये। जैसे पशु के चार पैर होते हैं, उसी प्रकार दो पैर आपके और दो आपकी पत्नी के, और आपके चार पैर हो गये। पशु जो बोझ का वहन करता है, उसी प्रकार आपके ऊपर साथ ही गृहस्थी का वजन आ गया, तो आप पशुतुल्य हैं। बुरा न मानें कि आपको पशु कहा जा रहा है क्योंकि साहित्यिक भाषा में आप गृहस्थी के वजन को ढो रहे हैं। साथ ही आप जहाँ भी जायेंगे तो चार पैर से ही जायेंगे। यदि दो पैर से जायेंगे तो शेष दो पैर आपको आगे नहीं बढ़ने देंगे, दो जायेंगे तो शेष दो भी जायेंगे।

राम जब वन में जाने लगे तो सीता भी तैयार हो गई कि मैं आऊँगी और सीता की विजय हुई; क्योंकि पत्नी पति की छाया की तरह होती है। अब उस दम्पत्ति के यहाँ जब एक संतान हो जाती है तो फिर चार पैर में दो और मिल जाते हैं और छह पैर वाला हो जाता है और छह पैर भौंरे के होते हैं। वह कभी इस फूल पर बैठता है, कभी उस फूल पर। इसी प्रकार पति-पत्नी का आपसी प्रेम बँट जाता है। फिर वह भौंरे की तरह शांति से नहीं बैठ पाता है। अब कदाचित् एक और संतान हो गई तो अब वह छह से आठ पैर वाला हो गया और आठ पैर मकड़ी के होते हैं, वह मकड़ी धीरे-धीरे जाल बनाती है, कसती है। बनाने के बाद उसमें बैठती है और सोचती है कि काम अच्छा हुआ, लेकिन उसमें से निकल नहीं पाती और स्वयं उसमें फंस जाती है।

इसी प्रकार गृहस्थ अपना जाल बना लेता है लेकिन संसार में ऐसे भी लोग हैं जो घर में वैरागी हैं, जिसमें धर्म के संस्कार विद्यमान हैं, जो कल्याण चाहते हैं, लेकिन 'वनिता-बेड़ी' यानि स्त्री बेड़ी का रूप धारण करती है कि बच्चे छोटे हैं, अभी दीक्षा नहीं लेना। जैसे-तैसे पत्नी मानती है तो बच्चे सामने आ जाते हैं कि अभी मेरी शादी हुई है और वह चारों तरफ से जाल में फँसा नजर आता है, फिर कल्याण नहीं कर पाता और उसी में अपनी जीवन लीला समाप्त कर देता है। फिर वह सोचता है कि मैंने शादी करके अच्छा नहीं किया।

हिन्दू शास्त्रों में भी बताया गया है कि घर क्या है ? तो भार्या को, स्त्री को गृह/घर कहा है। अतः जिसकी पत्नी है, उसका घर है और जिसकी पत्नी नहीं, उसका घर नहीं। पत्नी बिना घर, घर नहीं वन की तरह है। इसलिये घर यानि पत्नी। गृहस्थ शब्द पत्नी से आया है, पत्नी से प्रारम्भ हुआ है और पति शब्द पत्नी ने दिया है क्योंकि घर में जब पत्नी आती है तो पति कहा जाता है पुरुष और इस पति-पत्नी का संबंध बनाने की विधि को विवाह कहते हैं क्योंकि जब तक शादी नहीं होती तब तक गृहस्थाश्रम प्रारम्भ नहीं। अभी उसका गुरुकुल है, विद्यालय है, विद्याश्रम है। गृहस्थाश्रम शादी-विवाह के बाद प्रारम्भ होता है। विवाह के विषय में जैनाचार्य अकलंक देव ने राजवार्तिक में लिखा है। सातावेदनीय कर्म तथा चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से जो कन्या का वरण किया जाता है, उस वरण करने की पद्धति का नाम विवाह है या जिसे विशेष प्रकार से धारण ग्रहण किया जाये, वह विवाह है। चूँकि आचार्यगण विवाह की आज्ञा नहीं देते, क्योंकि विवाह सुख-शांति-आनंद रूप नहीं है। विवाह सुख-भ्रम उत्पन्न करता है।

विद्वानों ने भी विवाह की व्याख्या की है। उन्होंने कहा है कि विवाह में सबसे पहले होती वाह-वाह, मध्य में होती आह-आह, अंत में होती- तबाह उसका नाम है विवाह। यानि विवाह के प्रारम्भ में वाह होती है, पर जब जिम्मेदारी हाथ में आती है तो आह प्रारम्भ हो जाती है क्योंकि सिर से पैर तक

पसीना बहाना पड़ता है और अंत में जाकर जीवन तबाह हो जाता है, समाप्त हो जाता है, इसलिए आचार्यों ने विवाह की स्वीकृति नहीं दी। उन्होंने कहा- विवाह न करना श्रेष्ठता, उत्तमता, प्रसन्नता का प्रतीक है। जो विवाह कर विकारों, वासनाओं को जीत कर साधना करते हैं, वे ब्रह्मचारी कहलाते हैं। लेकिन जो स्वेच्छा से विवाह नहीं करते, वे बाल ब्रह्मचारी कहलाते हैं।

अंग्रेजी में कहा है- Bramchari is member of God.

ब्रह्मचारी भगवान का सदस्य है, विवाहित नहीं; क्योंकि ब्रह्मचारी पवित्र एवं पुनीत है, इसलिये वह बाल ब्रह्मचारी है। ब्रह्मचारी अंदर से होना तथा बाहर से होना - दोनों अलग-अलग हैं। चूँकि इधर अंदर तथा बाहर के ब्रह्मचारी की बात कही जा रही है कि जो स्वेच्छा से शादी न करे, वह बाल ब्रह्मचारी है। जो शादी करने का प्रयास करे, लेकिन शादी न हो पाये, वह बाल ब्रह्मचारी नहीं है।

एक बार एक व्यक्ति मिले, जो ब्रह्मचारी थे। पूछा कैसे हैं ? तो बताया कि 30-40 वर्ष तक तो लड़की की तलाश की, लेकिन सुन्दर लड़की नहीं मिली तो फिर शादी नहीं की। भैया ! शादी न होने का नाम ब्रह्मचारी नहीं अर्थात् जो अपने परम ब्रह्म स्वरूप में रमण करें, अपनी ज्ञान शक्ति से विकारों को जला दें, वे तीर्थंकरों की परम्परा में 5 बाल ब्रह्मचारी हुए। वर्तमान परम्परा में बाल ब्रह्मचारी का उद्गम ब्राह्मी-सुंदरी ने किया, जिन्होंने देखा कि हमारे पिता तीर्थंकर होने वाले हैं, शादी करके उनका सिर ससुराल वालों के सामने झुका देना ठीक नहीं है। इसलिये उन्होंने आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत धारण कर आर्यिका दीक्षा ली और साधना करके उत्तम स्थान को प्राप्त किया।

वही परम्परा आज भी चल रही है। आज देखते हैं कि शादी न करने वाला श्रेष्ठ है यानि उसे ज्यादा परेशानी नहीं होती है जिसने विकारों को जीता है लेकिन जिसने विकारों को नहीं जीता उसे परेशानी होती है। क्योंकि जो नहीं जीत पाया तो विकारों का वेग उत्पन्न होगा, जिससे वह उच्छृंखल हो जायेगा, जो ज्ञान को समाप्त कर देगा, अंधकार में ले जायेगा; अन्याय, अत्याचार और अनीति के पथ पर ले जायेगा। इसलिये गृहस्थों को कहा कि आप

विकारों को नहीं जीत पाते तो आपको विवाह करना श्रेष्ठ है, वासनाओं को सीमा में बाँध लेना श्रेष्ठ है। फिर आचार्यगण आज्ञा देते हैं कि ऐसी स्थिति में स्वदार संतोष व्रत धारण करो, एक पत्नी व्रत रखो और वासनाओं को जीतने का प्रयास करो और इसकी पात्रता उन्होंने दी गई, जो मुनि बनने की योग्यता को प्राप्त नहीं हैं, वासनाओं को नहीं जीत पा रहे हैं, उन्हें विवाह की सीमा में बँधना चाहिए।

विवाह एक सामान्य संज्ञा है, इसे पाणिग्रहण भी कहा जाता है। पाणिग्रहण का अर्थ वर-वधू दोनों परस्पर हाथ में हाथ लेकर संकल्प लेते हैं कि पूर्णतः पारस्परिक जिम्मेदारी निभायेंगे। पत्नी के योग्य पति के लिए तथा पति के योग्य पत्नी के लिए प्रतिज्ञा लेते हैं। उद्वाह भी कहा है विवाह को यानि उत्तम प्रकार की पद्धति से, तरीके से ली गई प्रतिज्ञा का निर्वाह करना। वर्तमान में जो प्रचलित शब्द है, उसका नाम परिणय है। चारों तरफ से पति-पत्नी के लिए कुटुम्ब परिवार, समाज, देश, राष्ट्र की जिम्मेदारी का निर्वाह करना परिणय है। ये सब विवाह के पर्यायवाची नाम हैं।

मुख्यतः विवाह तीन प्रकार के हैं- 1. धर्म विवाह, 2. स्वयंवर विवाह और 3. गंधर्व विवाह।

धर्म विवाह- लड़का-लड़की स्वेच्छा से पति-पत्नी के रूप में वरण नहीं करते। माता-पिता जिम्मेदारी सौंपते हैं, वे जिन्दगी भर के अनुभव को रख करके दोनों के योग्य लड़का-लड़की का चयन करते हैं, उसका नाम है धर्म विवाह।

स्वयंवर विवाह- एक ऐसा समय आया कि माता-पिता संकल्पित-विकल्पित होने लगे तो अपनी उपस्थिति में, जिम्मेदारी में वर वरण की आज्ञा देने लगे- वह स्वयंवर है। जिसमें मर्यादा के साथ योग्य वरों को आमंत्रित किया जाता था और कन्या, विधि विशेष से वर का चयन करती थी। ये दोनों विवाह श्रेष्ठ हैं।

प्रथम विवाह के विषय में शास्त्रों में देखते हैं तो मैना सुंदरी का उदाहरण श्रेष्ठ है, क्योंकि जब उसकी शादी का अवसर आया तो उसके पिता पुहुपाल

ने उससे वर चयन करने को कहा। वह विनम्रता से बोली कि– पिताश्री ! क्या कुलीन कन्यायें स्वयं वर का चयन करती हैं ? यह तो माता–पिता का कर्त्तव्य है। फिर जैसा वर मिले, यह तो भाग्य पर निर्भर है।

वह जानती थी कि माता–पिता कभी बच्चों के विषय में गलत नहीं सोचते, न ही गलत करते हैं। धार्मिक विवाह में धार्मिकता ही होती है, शांति, आनंद तथा हर्ष रहता है। स्वयंवर को भी धर्म विवाह में समाविष्ट किया गया है।

गंधर्व विवाह– जिसमें माता–पिता की स्वीकृति बिना क्षणिक प्रेम, स्नेह को देखकर विवाह किया जाता है। थोड़ा–सा किसी का प्रेम देखा और शादी कर ली। शादी भारतीय शब्द नहीं, पाश्चात्य शब्द है। यह अन्य संस्कृतियों से आया शब्द है। शादी शब्द का इतना ही अर्थ है कि जो माता–पिता की आज्ञा, सामाजिक परिवेश, धार्मिक मर्यादा आदि को तोड़ कर होती है उसे गंधर्व विवाह कहते हैं।

भारत के अलावा अन्य देशों में जाकर देखें तो लव मैरिज या कोर्ट मैरिज की प्रचुरता है। जहाँ पर धर्म, समाज, माता–पिता की अपेक्षा नहीं रखी जाती और मैरिज तो मरीज है। जो मैरिज करता है, वह वासना का मरीज होता है। यानि जिसमें बंधनों को तोड़ा जाता है, विवेक टूटता है, प्रेम–व्यवहार टूटता है, उसका मुख्य कारण लव मैरिज तथा कोर्ट मैरिज है। दोनों को गंधर्व विवाह में समाहित करते हैं, जिसमें प्रेम पहले और विवाह बाद में होता है, जबकि धर्म विवाह में विवाह पहले प्रेम बाद में होता है। गंधर्व विवाह का परिणाम निकलता है कि प्रेम पहले हो जाता है, विवाह शेष रह जाता है। प्रेम समाप्त होता है तो विसंवाद, लड़ाई–झगड़ों के कारण तलाक दिया जाता है। अमेरिका जो आज 25 करोड़ की आबादी वाला देश है, सर्वाधिक वैभवशाली, बुद्धिशाली देश है; लेकिन धर्म के अभाव के कारण प्रतिदिन 1400 तलाक होते हैं। विवाह का प्रेम क्षणिक है, क्योंकि संगति से प्रभावित होकर प्रेम हुआ है।

वर्तमान पद्धति तो इतनी बिगड़ती जा रही है कि एक साथ स्कूल–कॉलेज में पढ़ना–बैठना प्रारम्भ हुआ, टी.वी. का युग, लुभावनी ड्रेस जिसे देख जल्दी से प्रभावित होते हैं, क्षणिक चमक–धमक, टाइट कपड़े, पारदर्शी कपड़े– सोचो किन विचारों को उत्पन्न करेंगे ? एक–दूसरे के घर आने–जाने का रास्ता खुला है, कोई मर्यादा नहीं है। सोचो, लड़के–लड़कियों में इसका क्या प्रभाव पड़ेगा ? प्रारम्भ में उठना–बैठना, मिलना–जुलना होता है, धीरे–धीरे संबंध गहराते हैं, जो कोर्ट मैरिज या लव मैरिज में परिवर्तित होते हैं। माँ–बाप की सुनाई नहीं होती तो उन्हें आँसू बहाने पड़ते हैं, समाज के सामने नीचा सिर करना पड़ता है। ऐसी शादी ज्यादा दिन तक नहीं टिकती; क्योंकि वहाँ गुणों की, धर्म की प्रधानता नहीं; बल्कि सीमा का उल्लंघन हुआ है। इसलिये अशांति का साम्राज्य हुआ है।

चूँकि जब दूसरे समाज की लड़की परिवार के बीच आती है तो सामंजस्य नहीं होता, क्योंकि उनमें संस्कार अलग–अलग हैं जिससे अन्तर्द्वन्द्व यहीं से प्रारम्भ हो जाता है। एक कहेगा कि मेरे भगवान को, तीर्थंकर, परम्पराओं को, साधुओं को, शास्त्रों को मानो, दूसरा भी ऐसा ही कहेगा। वह आग्रह–प्रत्याग्रह ही नहीं, दुराग्रह होगा और इतना ही नहीं जय–पराजय होगी क्योंकि उनको पारस्परिक परिवार के धर्म का ज्ञान नहीं है। लेकिन जब एक समाज की लड़की होती है तो उसे जन्म से ही संस्कार रहते हैं, जिससे उसके साथ सामंजस्य होना सरल होता है, जबकि विपरीत समाज की लड़कियों में सामंजस्य होना कठिन होता है। एक परम्परा के लड़के–लड़कियाँ आते हैं, उनमें तथा परिवार के बीच संबंध मधुर होते हैं, क्योंकि वे परम्परा से परिचित होते हैं, समझते हैं, उनमें विश्वास भी बढ़ जाता है।

लेकिन जहाँ लव मैरिज होती है, वे लड़के–लड़कियाँ सोचते हैं कि मुझे न्यारा करो तथा वह संबंधियों के यहाँ जाने में संकोच करते हैं, अतः लव मैरिज के संबंध में समस्या आ जाती है कि जिसमें अनेक संबंधों को तोड़ा गया। इसलिये विवाह सज्जाति को ध्यान में रखकर करना चाहिए। जो शील

तथा कुल में समान हो – ऐसे व्यक्तियों के साथ किया गया विवाह धर्म विवाह में समाविष्ट होता है।

बाल भाव की उन्मुक्तता– विवाह करने की वय भी सीमित है। क्योंकि बाल विवाह के भी उदाहरण मिले, लेकिन प्राचीन आचार्यों ने इसे कंट्रोल किया। बहुत से राजनेता हुए जैसे सरदार वल्लभ भाई पटेल ने संविधान में यह नियम लागू किया कि बाल विवाह अपराध है, क्योंकि वह अभी विवाह को समझता तथा जानता नहीं है। इसलिये विवाह के लिए विशेषता रखी, बाल भाव की उन्मुक्तता। जब उनका बचपन समाप्त हो जाये, विद्यार्जन का काल समाप्त हो जाये और गृहस्थी के भार का संचालन करने की योग्यता आ जाये, तब वह विवाह के योग्य माना जाये। विवाह के समय वर–वधू की उम्र में अंतर रखा जाये। वधू से वर उम्र में कम से कम एक से दो वर्ष तक अधिक ज्येष्ठ होना चाहिए। यदि वर छोटा होगा तो वधू उसके अनुशासन में नहीं रह पायेगी।

अन्य ग्रन्थों में आठ प्रकार का विवाह बताया गया है। ब्रह्म, प्रजापति, देव, आर्ष, आसुरी, गन्धर्व, पिशाची तथा राक्षस। इनमें प्रारम्भ के चार विवाह उचित हैं, शेष चार विवाह अग्रहीत तथा अनुचित हैं। कथंचित् आदि के चार विवाह को धर्म विवाह में समाहित कर सकते हैं, लेकिन शेष चार को नहीं। धर्म विवाह तथा ब्रह्म विवाह की परिभाषा लगभग एक है।

दूसरा प्रजापत या प्रजापति– जिसमें संभ्रात को ही अपनी पुत्री देता है। तीसरा देव विवाह – जिसमें यज्ञकर्ता यज्ञकर्ता को पुत्री देता है। चौथा आर्ष विवाह– जिसमें अग्नि की साक्षी में विवाह होता है। पाँचवाँ आसुरी विवाह– जिसमें लेन–देन की शर्तें प्रधान होती हैं। आजकल व्यक्ति इसी समस्या में उलझा है– माँ–बाप, बहू–बेटा सभी परेशान हैं दहेज से। जबकि दहेज में खरीदी हुई वस्तु का मूल्यांकन नहीं होता। जब तक पैसा मिलता है, तब तक सुख–शांति है, पैसा खत्म तो संबंध खत्म हो जाते हैं। पैसा पौरुषता को समाप्त करता है। जबकि विवाह एक पुरुषार्थ है।

आचार्यों ने विवाह को त्रिवर्ग में समाहित किया है, क्योंकि गृहस्थों में

त्रिवर्ग प्रधान होते हैं, जबकि संतों में दो वर्ग प्रधान होते हैं। चार वर्गों में से प्रारम्भ में धर्म और अंत में मोक्ष रखा। आचार्यों ने मध्य के लोगों का भी ध्यान रखा। जो समर्थ नहीं हैं, उन्हें बीच के दो वर्ग बताये।

विवाह के उद्देश्य में तीन बातें प्रधान होती हैं– 1. धर्म संतति प्रधान– धर्म पुरुषार्थ, 2. प्रजापति– प्रजापत्य अर्थ प्रधान, 3. रति– काम प्रधान। तीसरा पुरुषार्थ काम है। जहाँ पर धर्म विवाह हुआ है, वहाँ पुरुषार्थ की परिभाषा प्रधान है। लेकिन शेष विवाह में काम प्रधान है, धर्म तथा अर्थ बाद के हैं। कितने ऐसे भी विवाह होते हैं, जिसमें अर्थ तथा काम प्रधान रहते हैं। लेकिन अर्थ और काम धर्म से रहित हैं तो उससे सुख नहीं होगा। विवाह के पश्चात् धर्मविहीन पत्नी धर्मपत्नी कहलाने की अधिकारी नहीं। पत्नी पति की सहचारिणी होती है। सहचारिणी का तात्पर्य है जो धर्म के साथ चले और धर्म नहीं तो सहचारिणी कैसे ?

आचार्य कहते हैं धर्म के साथ अर्थ के लिए रति की ओर कदम उठाये जाते हैं। धर्मपत्नी भी वह है जो धर्म के कार्य में स्वयं आगे रहे और दूसरों को यानि पति को धर्म के लिए प्रेरित करे। पंचकल्याणक आदि अनुष्ठान में पत्नी ही पति को माता–पिता बना सकती है, लव मैरिज वाले नहीं बन सकते हैं। लव मैरिज या कोर्ट मैरिज वाले धर्मकार्य नहीं कर पाते हैं। इसलिये ध्यान रखना कि विवाह ही करना है तो धार्मिकता से करना और जो धार्मिकता से करेगा, वह पुरुषार्थ कहलायेगा। धर्म के साथ अर्थ भी पुरुषार्थ है। धर्म–अर्थ के साथ रति भी पुरुषार्थ है। पुरुषार्थ में वासनायें नहीं सहयोग, धर्म, सहभागिता, शांति–प्रेम प्रधान होता है। इसलिये धर्म विवाह होना चाहिए, जिससे वे एक–दूसरे के मददगार बनते हैं।

आचार्यों ने त्रिवर्ग कहा। इसके बाद ही मोक्ष पुरुषार्थ होता है यानि शादी करके भी व्यक्ति मोक्षमार्ग पर लौट सकता है। और वह बाल ब्रह्मचारी नहीं तो ब्रह्मचारी मुनि बन सकता है, और मोक्ष जा सकता है। शादी के समय सात बातें ध्यान रखी जाती हैं, उसमें एक बात यह होती है कि धर्मकार्यों में परस्पर

में सहयोगी बनेंगे। सारी उपलब्धियाँ धर्म के साथ हैं, धन के साथ नहीं, अतः दहेज में अशांति है। जहाँ संस्कार नहीं हैं, वहाँ धर्म की आवाज नहीं होती है, वहाँ तो मौत ही चीखती-चिल्लाती है, मौत की आवाज सुनाई देती है। दहेज के स्थान पर अपने पुरुषार्थ, अपने भाग्य, अपनी कमाई तथा अपने हाथों पर भरोसा रखें। दहेज के भरोसे रहोगे तो सोना मिट्टी होगा। माँगना अच्छा नहीं, माँगने से तो मरना अच्छा है।

अतः सोचो-

दहेज के धन से, कब तक जी सकोगे ?
कब तक सुख-शांति रस पी सकोगे ?
जीवन साथी के गुण देख लो बंधु !
दहेज से कब तक दुःख-दर्द सी सकोगे।।

गंधर्व विवाह को हम पहले समझ चुके हैं।

पैशाची विवाह- जो अन्याय-अनीति के साथ होता है। इसमें सोते हुए, खेलते हुए, बेहोश अवस्था में धोखे से हरण करना, गलत चेष्टा करना, विवाह के फेरे लगाना, नशे में मदमस्त कर विवाह करना होता है।

राक्षसी विवाह- जबरदस्ती हरण करना। इसमें रावण प्रसिद्ध हुआ है, उसने सीता के साथ गलत करने का प्रयास किया, लेकिन सफल नहीं हुआ।

अतः धार्मिक विवाह ही श्रेष्ठ है। गृहस्थ धर्म की पात्रता में समाहित उनकी जीवन पद्धति को धर्म कहा। भगवान के समवशरण में ऐसे भी गृहस्थ थे, उनके लिए भगवान ने शांति का रास्ता, विद्या बताई और वे अंत में मुनि बने। ऐसे श्रावक गृहस्थावस्था में हों या मुनि अवस्था में, सुखी रहते हैं। अतः आज के उपदेश का इतना ही सार ग्रहण कर लेना कि मोक्षमार्गस्थ नहीं तो सद्गृहस्थ अवश्य बनें।

जय बोलिये, 1008 महावीर भगवान की.... !

***

2. संस्कारों की मूरत हो भारतीय नारी

जहाँ शिक्षित तथा संस्कारवान नारी है, वहाँ सब उपलब्धियाँ हैं और जहाँ शिक्षित व संस्कारवान नारी नहीं है, वहाँ का प्रातःकाल विसंवाद से होगा। वहाँ भगवान का नाम नहीं लिया जा सकता और जिसका प्रातःकाल विसंवाद से हुआ तो वहाँ अशांति ही होगी, शांति की कल्पना भी नहीं होगी। जिस घर में संस्कार से युक्त महिला होगी, वह सारे घर को स्वर्ग बनायेगी और जो संस्कार से रहित है, वह स्वर्ग को भी नरक बना देगी और वहाँ अशांति का साम्राज्य होगा।

धर्मस्नेही आत्माओ ! आज हम पुनः अपने विषय पर चलेंगे कि सात परम स्थानों में प्रथम गृहस्थ कैसा होना चाहिए, जिसके आधार से धर्म की मंजिल तैयार करना है। भगवान ऋषभदेव ने सप्त परम स्थान का वर्णन किया। वे कहते हैं कि यह परम्परा आज की नहीं, प्राचीन शाश्वत परम्परा है, जिससे अंत में निर्वाण की प्राप्ति होती है। अतः निर्वाण की प्राप्ति अंतिम मंजिल है तो आदि बिन्दु सद्गृहस्थ की मंजिल है। अतः हमको सीढ़ी को जानना होगा। आज अनेक धर्मों ने मंजिल की बात तो की है, लेकिन रास्ते की नहीं की।

एक व्यक्ति ने आचार्य उमास्वामी महाराज से आकर पूछा- गुरुवर ! आप मार्ग की बात पहले क्यों कर रहे है। उन्होंने कहा- यही पहला सूत्र है फिर अंतिम मोक्ष मंजिल की बातें हैं, क्योंकि मंजिल में मतभेद नहीं। हर व्यक्ति मोक्ष मंजिल को पाना चाहता है। मतभेद तो रास्ते में, सीढ़ी में, मार्ग में है, इसलिये पहले मोक्षमार्ग की बात कही। वह बीज किस भूमि पर अंकुरित होता है, उसे देखना है। कल विवाह रूपी प्रथम पायरी/सीढ़ी की भूमिका को देखा था कि विवाह किसलिये किया जाता है। जहाँ दो का मिलन होता है, वहाँ

उनकी अपेक्षा पात्रता है। जहाँ पात्रता नहीं है, उस घर में पाठ-पूजा हो सकेगी क्या ? नहीं हो सकेगी।

कल गृह की बात कही थी, गृह का अर्थ धर्मपत्नी कहा। जहाँ से घर प्रारम्भ होता है। जब साहित्य को उठा करके देखते हैं कि जहाँ नारी जगत में नारी को उपेक्षित किया गया। शिक्षा के क्षेत्र में पीछे रखा यानि एक समय निकला ऐसा, जहाँ नारी को शिक्षा देना अपराध माना जाता था। धार्मिक क्षेत्र में प्रतिबंध लगाया गया, पूजा-विधान में बैठने से निषेध करते थे, धार्मिक सीमा में प्रवेश नहीं था, उन्हें विशेष पाबंदी में रखा जाता था, कुंठाग्रस्त बना दिया जाता था। जबकि भगवान महावीर का, हनुमान आदि महापुरुषों का जन्म नारी से ही हुआ। अपना चिंतन बदलने का प्रयास करें कि नारी पाप की खानी नहीं, धर्म की खानी है।

नारी ही नर को जन्म देती है और नर को ही नहीं, नारायण को भी जन्म देती है। यह संदेश भगवान महावीर ने दिया था। भगवान महावीर स्वामी ने चंदनबाला से आहार लिया तथा अपने समवशरण में प्रमुख गणिनी आर्यिका का स्थान दिया क्योंकि धर्म के प्रति पुरुष को अधिकार है तो नारी को भी है। जितना पुरुष अपना हित चाहता है, उतना ही नारी चाहती है। पुरुष कल्याण चाहते हैं, तो नारी भी कल्याण चाहती है। भगवान महावीर ने इस बात को सिद्ध करके दिखाया कि यह परम्परा अनादि काल की रही है कि महिला की प्रधानता रही, उसका अस्तित्व रहा।

समवशरण में एक लाख मुनि थे तो तीन लाख आर्यिकाएँ थीं, तीन लाख श्रावक थे तथा पाँच लाख श्राविकाएँ थीं, यानि नारियों की संख्या अधिक रही। आज भी आप देखते हैं कि चाहे धर्म सभा हो, पूजा-पाठ-विधान-अभिषेक हो, यह परम्परा जैन में ही नहीं, हर संस्कृति में है। व्रत, उपवास, त्याग, तपस्या, सेवा आदि में महिलाएँ ही आगे देखी जाती हैं।

जब महावीर स्वामी ने देखा कि धर्म की भावना महिलाओं में अधिक है तो फिर उन्हें कुंठाग्रस्त क्यों बनाया जा रहा है ? शायद धर्मपत्नी को, जब

अधर्म पति देखेगा तो उस पर दबाव डाला जाता है कि ऐसा मत करना, वैसा मत करना। एक तो स्वयं नहीं कर पा रहे हैं, दूसरा यदि कोई करता है तो उसे रोकते हैं तो इससे बड़ा अपराध कोई नहीं है। जिसे आप नहीं कर पा रहे हैं, यह आपकी असमर्थता है और दूसरों का अवरोधक बन जाना यह अपराध का आंतरिक तरीका है। ऐसी अवस्था में अपराधी अपराध मुक्त नहीं होगा, क्योंकि अभी तक आप धर्म के निकट नहीं आये।

जब तक आप धर्म को जानोगे नहीं, पहचानोगे नहीं तब तक अपराध मुक्त नहीं हो पाओगे। आप मुनि नहीं बन पाते कोई बात नहीं, अगर पत्नी आर्यिका बने तो उसे मत रोकना, पूजा करे तो सर्वप्रथम कर्तव्य है कि आप उसमें सहभागी बनें, क्योंकि विवाह के समय संकल्प लिया था सहयोग का। नारी का जिस कुंठा भाव में जीवन व्यतीत हो रहा है, उसके लिये भगवान महावीर ने शंखनाद किया, अभयदान दिया कि धर्म में पुरुष जीना चाहते हैं तो नारी भी सीमा-मर्यादा के साथ धर्म कर सकती है। अनेक आचार्यों ने भी इस परम्परा को कायम रखा और आचार्य मानतुंग ने अपने भक्तामर काव्य में लिखा-

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्र-रश्मिं
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालम्॥2॥

पूज्य आचार्य मानतुंग महाराज का यह स्तोत्र मात्र जैन समाज ही नहीं, बल्कि अन्य सम्प्रदाय वाले भी मानते हैं। यह इतना प्रिय एवं सिद्ध स्तोत्र है, जिसमें बहुत कुछ रहस्य छिपे हुए हैं। ऐसा कोई भी संकट नहीं है जो इसके पाठ से दूर न हो। ऐसी कोई उपलब्धि नहीं जो इससे प्राप्त न होती हो।

पूज्य आचार्य मानतुंग महाराज यहाँ कह रहे हैं कि सैकड़ों स्त्रियाँ सैकड़ों पुत्रों को जन्म देती हैं। लेकिन ऐसी स्त्री से क्या प्रयोजन जो आपके समान पुत्र को उत्पन्न न कर सके। जैसे सभी दिशाओं में नक्षत्र होते हैं, वे

प्रकाश फैलाते हैं, लेकिन हजारों-लाखों-करोड़ों नक्षत्र उतना प्रकाश नहीं फैला पाते, जितना प्रकाश सूर्य को जन्म देने वाली पूर्व दिशा फैलाती है। सूर्य प्रकाश प्रदान करता है, इसलिये शास्त्रों में तीर्थंकर की माँ को जगत जननी कहा है।

जब एक माँ सुयोग्य पुत्र को जन्म देती है तो सारे घर, परिवार, मोहल्ला, देश में हर्ष तथा आनंद छा जाता है। क्योंकि पुत्र के माध्यम से माँ की कीमत बढ़ जाती है और इसके पीछे छिपा है माँ का संस्कार, माँ की परीक्षा, त्याग, तपस्या। गर्भ में बालक माँ के संस्कार में पलता है और जो संस्कार माँ के पास मिलते हैं, वे संस्कार अन्य कहीं नहीं मिल सकते।

कहा है, दुनियाँ के उपकार को चुकाया जा सकता है, लेकिन माँ के उपकार को नहीं चुकाया जा सकता है। जिस माँ ने नौ माह तक कोख (उदर) में रखा, जन्म देकर पढ़ाया-लिखाया, अपनी इच्छाओं को रोका, आपकी पूर्ति की। तुम्हारी छोटी अवस्था में माँ स्वयं गीले में लेटी, तुमको सूखे में लिटाया, स्वयं फटे कपड़े पहने, तुमको अच्छे वस्त्र पहनाये, स्वयं भूखी रही, तुमको पेट भर भोजन दिया, स्वयं वेदना से चीखती रही, लेकिन तुमसे कुछ नहीं कहा और तुम्हारे ऊपर जब कष्ट आया तो उसे प्राणपन से दूर किया। अनेक प्रकार से मेहनत करके तुम्हारा लालन-पालन किया, निरन्तर अपनी सुख-सुविधा को किनारे रखकर सदैव तुम्हारे लिये तैयार रही। रात-रात भर जागरण किया, वह भी एक नारी ही है। आचार्य समन्तभद्र महाराज कहते हैं कि नारी ने बहुत बड़ा काम किया कि संसार को प्रकाश करने वाले तीर्थंकर को जन्म दिया।

अनेक दार्शनिक कहते हैं, जैन धर्म ने नारी को कोई स्थान नहीं दिया, स्कूलों की पुस्तकों में एक पाठ आया था, जिसमें कहा भगवान महावीर ने नारी को प्रधानता नहीं दी। भगवान महावीर की नारी के विषय में इससे बड़ी क्या विशेषता हो सकती है कि दीक्षा देकर नारी को समवशरण में स्थान दिया। इस शाश्वत परम्परा को शक्ति प्रदान की।

जहाँ मनुस्मृति में भी कहा है-

''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः''

जिस कुल में नारी की पूजा होती है उस कुल में देवता निवास करते हैं। और जहाँ नारी की उपेक्षा होती है वहाँ घर के लोग बाहर चले जाते हैं। मनुष्य ही नहीं, पशु-पक्षी भी वहाँ रहना पसन्द नहीं करते। नारी शब्द अपने आप में महान अर्थ रखने वाला है। न+अरि - जिसके समान शत्रु न हो, वह नारी है।

न+अरि= नारी यानि शत्रु नहीं हो सकती है नारी। वह तो ममता की, करुणा की मूर्ति मानी गई है, करुणा की आधार शिला मानी गई है। ममता का आविष्कार नारी से हुआ है। कभी पुरुष को ममतावान नहीं कहा गया। ममता नारी से उत्पन्न हुई है, इसलिये वह नारी का आभूषण है। पिता में दुलार तो हो सकता है पर ममता नहीं। बच्चे के लालन-पालन की जिम्मेदारी भी माँ को ही निभानी है, पिता को नहीं। बच्चे के सामने माता-पिता दोनों को खड़ा किया जाये तो प्रधानता माँ की ही रहेगी।

रूठा हुआ बच्चा यदि जायेगा तो सर्वप्रथम माँ के पास जायेगा। बालकों को माँ ही मनायेगी, पिता नहीं, क्योंकि ममता है उसमें। मनुष्य क्या पशुओं में भी देखा जाता है कि बच्चों के प्रति सहज ही ममता उत्पन्न होती है। इसलिये विशेषता दी गई है कि वह रत्नगर्भा है, क्योंकि महापुरुषों को जन्म देने वाली है माँ। सीता, द्रौपदी, अंजना जैसी अनेक धार्मिक, शीलवती एवं पतिव्रता नारियों के जीवन चरित्र से शास्त्रों के पन्ने भरे पड़े हैं तथा उनकी कथा भी प्रचलित है।

राजनैतिक दृष्टिकोण से देखते हैं तो हमारे देश में दुर्गावती, लक्ष्मीबाई आदि रानी, महारानी हुई जिन्होंने स्वयं राज्य का संचालन कर प्रजा का संरक्षण ही नहीं राज्य का विकास भी किया है। वर्तमान में प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी से लेकर आज राष्ट्रपति पद पर श्रीमती प्रतिभा पाटील जैसी अनेक नारियाँ हुई जिन्होंने देश की बागडोर संभाली तथा गौरव उपस्थित किया। अतः नारी वह कर सकती है, जो पुरुष नहीं कर सकता।

आवश्यकता है सुशिक्षित होने की, ज्ञान की तथा शिक्षा क्षेत्र की, जहाँ शिक्षित तथा संस्कारवान नारी है, वहाँ सब उपलब्धियाँ हैं और जहाँ शिक्षित एवं संस्कारवान नारी नहीं है, वहाँ का प्रातःकाल विसंवाद से होगा। वहाँ भगवान का नाम नहीं लिया जा सकता और जिसका प्रातःकाल विसंवाद से हुआ तो वहाँ अशांति ही होगी, शांति की कल्पना भी नहीं होगी। जिस घर में संस्कार से युक्त महिला होगी वह सारे घर को स्वर्ग बनायेगी और जो संस्कार से रहित होगी, वह स्वर्ग को भी नरक बना देगी और वहाँ अशांति का साम्राज्य होगा।

इसलिये गृहिणी का प्रथम लक्षण है- धर्मपरायणा। पत्नी यदि धार्मिक तथा संस्कारवती होगी तो वह करुणाशीला होगी। उसे पाप से डर होगा। नारी को धर्म से प्रीति होगी तो वह अन्याय-अनीति नहीं करेगी, बल्कि वहाँ कर्तव्यशीलता तथा सहनशीलता का पाठ मिलेगा जिससे मार्ग प्रशस्त होगा।

साहित्यकारों ने नारी के विषय में कहा है-

कार्येषु मंत्री वचनेषु दासी, भोज्येषु माता शयनेषु रम्भा।
क्षमा धरित्री, मृदुभाषिणी च षड्भिर्गुणानां नारी कुलतारिणी च॥

यहाँ छह गुण गृहिणी के कहे हैं। अभी तक सभी शायद यही समझते थे कि पत्नी एक रूप में होती है, लेकिन पत्नी एक रूप में नहीं, अनेक रूप में होती है। वह **कार्येषु मंत्री** यानि कार्यों में मंत्री का काम करती है, क्योंकि संस्कारवती है, कार्य में सलाह देती है, उचित-अनुचित का संकेत देती है, इस प्रकार पति के साथ गृह चलाने में वह दायित्व निभाती है। परिवार का संचालन कैसे हो, इस हेतु मात्र प्रस्ताव ही नहीं रखती, बल्कि उसकी विधि भी बताती है, सहभागिता देती है। सभी प्रमुख कार्यों में मंत्री का काम करने वाली सद्गृहिणी है।

दूसरा गुण **वचनेषु दासी**- वचनों में दासी। और दासी कौन हो सकती है? जो सद्संस्कारों में पली हो, जिसमें सद्संस्कार भरे हों, जिसे सद्संस्कार मिले हों। ऐसी नारी वचनों में दासी का रूप धारण करेगी, क्योंकि उसके पास

शिक्षा है। वह जो भी वचन बोलेगी, मर्यादा तथा सभ्यता के साथ बोलेगी, आदर-सत्कार के साथ बोलेगी; क्योंकि उसने संस्कारों को प्राप्त किया है, शिक्षा को पाया है और जहाँ संस्कार नहीं, वहाँ कहा गया-

कुलटा नारी कलह कारिणी, कर्कश वचन उचारे।
दोई कुलन की लाज गमावे, पति को विष दे मारे॥

अर्थात् कुलटा नारी वह है जो कर्कश, कठोर, असभ्य, अशिष्ट वचन बोलती है। और वचन तो वचन हैं। शब्द फूल भी हैं और शस्त्र भी।

कहा भी है-

शब्द सँभारे बोलिये, शब्द के हाथ न पाँव।
एक शब्द अमृत करे, एक हृदय में घाव॥

यानि शब्द सँभाल कर समय पर बोलना चाहिए, गरिमा-मर्यादा को ध्यान में रखकर बोलना चाहिए।

जैन धर्म में शब्दों को अहिंसा-हिंसा में समाहित किया गया है। कठोर शब्द बोलना तो हिंसा है। गुरुजन अपने शिष्यों को डाँटते हैं। कठोरता से चोर को चोर या शराबी को शराबी कह देते हैं तो उसे बुरा लग जाता है, जबकि गुरुओं में अनादर का भाव नहीं, बल्कि पवित्र भावना होती है; फिर भी किसी को दुःख हुआ है तो वे प्रतिक्रमण करके प्रायश्चित्त कर लेते हैं, अतः वचनों से हिंसा संभव है।

जहाँ वचनों की सीमा-मर्यादा न हो, वहाँ विसंवाद-लड़ाई होती है। वचनों से महाभारत हुआ था, द्रौपदी ने मात्र इतना ही तो कहा था दुर्योधन से कि अंधों के अंधे होते हैं और इस शब्द ने महाभारत की रचना की थी, जिसमें लाखों लोगों की हिंसा हुई थी।

पति ने पाणिग्रहण के समय विश्वास दिलाया था और इतनी बड़ी जिन्दगी की जिम्मेदारी ली तो वहाँ यदि ऐसे वचनों का प्रयोग होगा तो वहाँ निर्वाह तो होगा जीवन का, लेकिन शांति-आनंद नहीं रहेगा।

बंधुओ ! जिन्दगी का निर्वाह करना अलग बात है और शांति से जीवनयापन करना अलग बात है। अतः गृहिणी में यह गुण होना चाहिए कि वह पति के सम्मुख दासी की तरह बात करे। यदि स्वामी की तरह बात करेगी तो अभिमान जागेगा, क्योंकि स्वामी के सामने तो सेवक सेवक होता है और यदि वह स्वामीपना पति के सामने हो गया तो कलहकारिणी बात प्रारम्भ होगी, कलह होगा, झगड़े होंगे, मर्यादा टूटेगी तो बच्चों पर क्या संस्कार पड़ेगा ?

ग्रहण किया है, पाणिग्रहण किया तो पति को परमेश्वर की तरह माना। यह प्राचीन भारतीय तथा धार्मिक संस्कृति रही कि पति ही परमेश्वर है। पत्नी स्वयं सारे संकट का वहन करती है, वहन करने के लिये तैयार रहती है, कष्ट सहन करने तैयार रहती है। इसलिये जब वह पति के सम्मुख जाये तो उसके वचन दासी की तरह होने चाहिए।

राम जब वनवास जाने लगे तब कैकई ने राजा दशरथ से राम के लिये 14 वर्ष का वनवास माँगा, राम ने कहा– सीते ! तुम राजमहल में रहना, माँ कैकई की सेवा करना, वन का मार्ग कँकरीला, कँटीला रहता है। भूख–प्यास, सर्दी–गर्मी की वेदना सहन करनी पड़ती है।

सीता ने कहा– स्वामी ! जब वरमाला डाली गई थी, अर्द्धांगिनी का रूप दिया गया था और अब शरीर का आधा भाग कहीं और आधा भाग कहीं जाये, कैसे हो सकता है ? विदाई के समय भी माता–पिता ने कहा था कि बेटा ! पति की परछाई बनकर रहना, मैं उसका उल्लंघन नहीं करूँगी।

तब सीता की प्रार्थना पर राम को मौन रहना पड़ा और उन्होंने सीता को अनुमति प्रदान की। राम, सीता, लक्ष्मण वनवास गये, सीता का हरण हुआ, वहाँ अनेक समस्याओं से जीवन गुजरा। जब 14 वर्ष व्यतीत हो गये और राम वनवास से वापिस लौटे तो सीता के विषय में समस्या खड़ी हो गयी।

बाल्मीकि पुराण में लिखा है कि धोबी–धोबिन की लड़ाई हो रही थी। धोबी, धोबिन से कह रहा था– मैं वह राम नहीं हूँ कि सीता इतने दिन रावण के यहाँ रही और उसे रख लिया।

यह बात जब राम के कान में पड़ी तो उन्होंने कृतांतवक्र को बुलाया और उसे आज्ञा दी कि जाओ, सीता को पहले तीर्थयात्रा कराके उसके बाद ऐसे जंगल में छोड़ आना, जहाँ मनुष्यों का प्रवेश संभव न हो, सूर्य की किरण भी प्रवेश नहीं कर पाती हो।

कृतांतवक्र इतना सुनते ही मूर्च्छित हो गया पश्चात् उसे सचेत किया गया और वह पूछता है– हे स्वामी ! क्या कारण है ? राम सारी बात बताते हैं और आदेश देते हैं। कृतांतवक्र आज्ञा को शिरोधार्य करके माँ सीता के सम्मुख पहुँचकर तीर्थयात्रा की बात करता है। वह सुयोग्य पत्नी पति की आज्ञा को शिरोधार्य करके उनके भावों को जानकर उसकी यशगाथा गाती है और कृतांतवक्र के साथ तीर्थ पर निकल जाती है। तीर्थयात्रा के पश्चात् एक बियावान जंगल में पहुँच कर कृतांतवक्र रथ को रोक देता है। और कहता है–

हे माता ! हे जननी ! मेरी प्रार्थना पर ध्यान दीजिये। कृपया आप रथ से उतरकर इस शिला पर आसीन हो जाइये। सीता सोचती है, रथ खराब हो गया होगा, इसलिये यह ऐसी प्रार्थना कर रहा है। सीता उतर कर शिला पर बैठ जाती है। कृतांतवक्र हाथ जोड़ता तो उसका गला रुँध जाता है, आँखें भर आती हैं। तब सीता पूछती है– हे कृतांतवक्र ! क्या कहना चाहते हो ? और तुम्हारी आँख में आँसू क्यों ?

कुछ कहना चाहता हूँ।

क्या कहना चाहते हो ?

माँ ! आपकी तीर्थयात्रा पूरी हो गई।

सीता ने कहा– बड़े हर्ष का विषय है, विषाद नहीं, आनंद मनाना चाहिए। यह तो धार्मिकता का प्रतीक है, लेकिन आँख में आँसू क्यों ? ये तो अपशकुन, अशुभ का प्रतीक हैं।

कृतांतवक्र ने कहा– माँ ! तीथयात्रा के पश्चात् महाराज की आज्ञा

आपके लिये इधर ही की थी, आज्ञा ही नहीं राज-आज्ञा, आदेश था, जिसे टाला नहीं जा सकता है। अब मैं वापस अयोध्या जा रहा हूँ। यदि महाराज को संकेत-समाचार देना हो तो दे सकती हैं। सीता इस बात को सुनकर विस्मित होती है और उससे पूछती है कि क्या कारण है ?

कृतांतवक्र सीता को सारी बात सुनाता है और सीता अपने ज्ञान से, ध्यान से भगवान का नाम स्मरण करती है, समता-शांति धारण करती है, चूँकि उसके अन्दर अपार धैर्य था। सोचो, रानी होकर भी उसे अकेले बियावान जंगल में छोड़ा गया था।

बंधुओ ! यदि आज की स्त्री होती तो शायद उसका हार्टफेल हो जाता या धैर्य का बाँध टूट जाता, पुलिस को बुलाती, मायके चली जाती, माँ-बाप को ले आती, अपने सास-ससुर को उलाहना देती, ताना देती। ऐसा ही करना था तो शादी क्यों की थी ? न जाने क्या-क्या आज के समय में हो सकता है। वह तो महान संस्कारवान नारियों का जीवन था। इसलिये सीता ने कोई उलाहना नहीं दी। बल्कि सीता ने इतना ही कहा कि-

लोकापवाद के कारण आपने मुझे निकाला है।
सम्यग्दर्शन छोड़ न देना जो रखवाला है॥

अतः सीता ने संदेश दिया कि मैं तो कर्मों की मारी हूँ और निश्चित ही मैंने पहले ऐसे कर्म किये हैं, जो आज उदय में आ रहे हैं। स्वामिन् ! इसमें आपका कोई दोष, अपराध नहीं है। मेरे ही कर्मों का अपराध है, लेकिन आप सुखी रहें। मुझसे आज तक जो अपराध हुए हों, उन्हें आप क्षमा कर देना। सीता न जाने कितनी बातें कहती और अंत में कहती कि सब कुछ छोड़ा, मुझे छोड़ा, लेकिन धर्म को नहीं छोड़ना। धर्म छूट जायेगा तो सब कुछ छूट जायेगा।

हे कृतांतवक्र ! बस, इतनी बात मेरी राम से कह देना। कृतांतवक्र आँसू बहाते-बहाते अयोध्या में राजा राम के पास आकर समाचार निवेदित कर देते

है। यह हमारी आर्य संस्कृति थी। जहाँ पर ऐसी भीषण गंभीर समस्या के बीच में भी **'वचनेषु दासी'** की परम्परा का निर्वाह सीता ने किया था।

भोज्येषु माता- श्रीकृष्ण भोजन के लिए बैठे और रुक्मणी उनके लिए भोजन परोस रही है। भोजन कराते समय पत्नी पत्नी के रूप में नहीं होती, उस समय तो वह माता के रूप में होती है। आप भी ध्यान रखना, उस समय पत्नी के रूप नहीं माता के रूप में हों। जैसे माँ अपने बेटे के लिये मना कर, प्रेम से, शांति से, हर्षित होकर भोजन कराती है, पत्नी भी अपने पति के लिए उसी प्रकार से भोजन कराती है। यह हमारी आर्य संस्कृति रही है।

तुम्हारे परमेश्वर भोजन करने बैठें और कहीं तुमने यहाँ-वहाँ के ताने देना शुरू कर दिया, सुबह से मेहनत करके वे शाम को घर आये, हारे-थके न जाने कितनी समस्याओं से गुजरे, तुमने उन समस्याओं को तो नहीं समझा और अपनी समस्या उनके सिर लाद दी, अनेक परेशानी उनके सिर पर पटक दीं।

सोचिये, क्या आप सच्चे मायने में उन्हें परमेश्वर मानती हैं ? क्या सच्चे मायने में अपने आपको दासी स्वीकार करती हैं ? क्या सच्चे मायने में आप उस समय, मौके पर माता के रूप में रही हैं ? हारा-थका व्यक्ति हो तो उसका भोजन नहीं हो पाता और तुमने उस समय अनेक बातें सुना करके, संभवतः पेट भर भोजन भी नहीं करने दिया, कैसा है तुम्हारा स्नेह ? कैसा है तुम्हारा समर्पण ? साहित्यकार कहते हैं, बस उस समय आप माता की तरह हो जाइये।

शयनेषु रम्भा- शयन के समय रम्भा की तरह होती है। श्रृंगार की परम्परा प्राचीन काल में मात्र अपने पति तक के लिये ही रही। सारा श्रृंगार, सारा आकर्षण मात्र पति तक के लिये होता है। यह हमारी भारतीय संस्कृति रही, पति के लिये महिला/नारी श्रृंगार करती है, उसके लिये हर्षित करती है, आकर्षित करती है। इसलिये वैधव्य अवस्था में श्रृंगार समाप्त हो जाता है।

विधवाओं का श्रृंगार संभवतः संस्कारवान कुल की परम्परा नहीं है। इसे सज्जन पुरुष अच्छी दृष्टि से नहीं देखते, क्योंकि श्रृंगार तो पति था, पति के लिये श्रृंगार था और जब पति ही समाप्त हो गया तो श्रृंगार किसका ? किसके लिये ?

आज इन सब शिक्षाओं की इसलिये आवश्यकता है, क्योंकि हम इन सारी अवस्थाओं को भूलते जा रहे हैं। आज की बड़ी-बड़ी शिक्षाओं में हमारी मौलिक शिक्षा समाप्त होती जा रही है। मौलिक संस्कृतियाँ, मौलिक संस्कार समाप्त होते जा रहे हैं, जो हमारे कर्तव्य थे, जो हमारे अनेक प्रकार के रहस्यों के लिये संस्कार थे, क्रियायें थीं। ऐसा लगता है कि आज ऐसे संस्कार की आवश्यकता गृहस्थों के लिये बहुत अधिक है।

जब मैं कभी विद्वानों के बीच बैठता हूँ, गृहस्थाचार्यों के बीच बैठता हूँ तो ये कहता हूँ कि गृहस्थाचार्यों के लिये पहले सभी को गृहस्थोचित् शिक्षा देनी चाहिए, क्योंकि संस्कारवान कोई एक व्यक्ति रहेगा, वह अपने सारे घर के लिए संस्कारों से भर देगा, सारे समाज के लिये संस्कारवान कर देगा और जहाँ समाज संस्कारित होगी, वहाँ नगर, देश और राष्ट्र संस्कारवान होगा, लेकिन जहाँ व्यक्ति ही संस्कारित नहीं होगा, वहाँ कौन देगा संस्कार ?

इसलिये माता-पिता का प्रथम कर्तव्य है, उनके लिये आवश्यक है अपने घर में एक ऐसे संस्कारवान व्यक्ति के लिये जन्म दें।

एक बार आहार के बाद बीना के कुछ लोग मेरे साथ चल रहे थे। चलते समय एक चर्चा उठ गई कि मैंने बच्चों के लिए इतने तो नियम दिये कि कुल परम्परा में कभी भी मांस, शराब, अंडे और जुआ का सेवन न हो, भगवान के दर्शन व रात्रि भोजन त्याग का नियम हो।

मैंने कहा- बहुत अच्छा। यह सबसे बड़ा प्रधान कर्तव्य है कि आज प्रायः लोग बच्चों को पढ़ा देते हैं, अच्छी पोस्ट पर पहुँचा देते हैं, अच्छे व्यापार पर बैठा देते हैं, बच्चा कमाऊ हो सकता है, लेकिन टिकाऊ नहीं हो सकता।

उसके जीवन में धन-सम्पदा तो हो सकती है, लेकिन सुख-शांति नहीं हो सकती है, क्योंकि जहाँ पर धर्म नहीं है, वहाँ सुख नहीं होगा, शांति नहीं होगी। इसलिए माता-पिता बच्चों के लिये धर्म के संस्कार सिखा दें। छोटे-छोटे बच्चे जब हमारे पास आकर णमोकार मंत्र सुनाते हैं तो मेरा मन खुश हो जाता है, भगवान के दर्शन करते हैं तो मेरा मन खुश हो जाता है, भगवान का अभिषेक, पूजा-पाठ करते हैं, संतों के लिये आहार देने के लिये आते हैं तो मेरा मन आनंद से भर जाता है।

कभी आप लोग मध्यप्रदेश में, बुन्देलखण्ड में जाकर देखें। जिस गाँव में पहुँचोगे, उस गाँव में अनेक चौके लगेंगे और फिर वहाँ देखोगे कि छोटे-छोटे, नन्हे-नन्हे बालक खड़े हुए हैं। माता-पिता की आवाज कम आयेगी। सबसे अधिक आवाज बच्चों की आयेगी- हे स्वामी ! नमोऽस्तु...नमोऽस्तु...नमोऽस्तु..., अत्र...अत्र...अत्र..., तिष्ठ...तिष्ठ...तिष्ठ... और इतनी मृदुलता से बोलते हैं कि रास्ते में चलने वाले व्यक्ति भी देखने के लिये लालायित हो जाते हैं। जब पूजन-प्रशिक्षण शिविर लगता है तो हजारों व्यक्ति इसमें शामिल होते हैं। वे शिविरार्थी धोती, दुपट्टा, हार-मुकुट पहन कर जिस रास्ते में बढ़ते हैं, सारे नगर में हर्ष छा जाता है, सारे नगर में खुशियाँ छा जाती हैं। इसलिये बंधुओ ! कहने का तात्पर्य इतना ही है कि हम संस्कार तभी दे पायेंगे, जब हम स्वयं संस्कारवान बनेंगे।

क्षमाधारिणी- क्षमा को धारण करने वाली, यह गृहिणी का लक्षण दिया। क्रोधी स्वभाव वाली गृहिणी घर को जला देगी, घर का विनाश कर देगी, सत्यानाश कर देगी, वह घर को बनायेगी नहीं। इसलिये क्षमाधारिणी। कभी किसी से कुछ बिगड़ जाये, कुछ टूट जाये तो उस पर गुस्सा मत हो, गर्म मत हो, समता और सहिष्णुता का परिचय दे। किसी भूमिका में यदि पति डाँट देता है तो पत्नी का कर्तव्य है कि वह उस समय सहिष्णुता का परिचय दे, शांत रहे, सहनशीलता रखे, गंभीरता रखे तो समझ लेना वह घर स्वर्ग बनेगा और कहीं आपने जवाब दिया तो फिर प्रारम्भ में वचनों की लड़ाई होती है,

शब्दों की लड़ाई होती है और फिर जब शब्दों की लड़ाई से जीत नहीं होती तो फिर हाथ, लकड़ी, अस्त्र, शस्त्र और न जाने क्या-क्या रूप खड़े हो जाते हैं।

हम देखते ही हैं कि बड़ी-बड़ी हिंसायें भी क्रोधावेग में हो जाती हैं, इसलिए गृहिणी का लक्षण दिया- क्षमाधारिणी। क्षमा धारण कर लो, जो तुम्हारे लिये मन भर शांति देगी। क्षण भर की क्षमा, मन भर की शांति, असीम आनंद और खुशियों को उत्पन्न कर सकती है, इसलिए कहा क्षमाधारिणी।

मृदुभाषिणी- भाषा मृदु होनी चाहिए। जिस स्त्री में ये छह गुण आ जाते हैं, वहाँ पर शांति ही शांति है।

एक बार की बात है कि एक नगर में एक सेठजी रहते थे, लेकिन सेठजी का वंश परम्परा से कुछ ऐसा ही समय व्यतीत हुआ, जहाँ पर धर्म के संस्कारों का नामोनिशान नहीं रहा। परम्परागत जहाँ पर धर्म संस्कार न मिले हों, बंधुओ ! वर्षों-वर्ष जो भूमि उपजाऊ न बनाई गई हो, उस भूमि का क्या होगा ? वह भूमि बंजर हो जायेगी। जिस मकान की वर्षों-वर्ष सफाई न की जाए, वह मकान नहीं रहता, वह तो खण्डहर हो जाता है, एक जंगल ही बन जाता है।

धर्म संस्कार विहीनता रही तो संतान भी ऐसा हुई कि धर्म के संस्कारों से विहीन रही। कहने को जैन लेकिन जैन धर्म के विषय में एक अक्षर भी नहीं जानते थे, जैन धर्म का कोई नाम नहीं था, भगवान का नाम तथा णमोकार मंत्र तो स्वप्न में भी याद नहीं होता था। सेठ जी के सात पुत्र थे, छह की शादी हो गई। योग ऐसा मिला कि छह पुत्रों की शादी भी ऐसे घरों- ऐसे परिवारों के मध्य हुई, जहाँ पर धार्मिक संस्कार नहीं रहे।

बंधुओ ! धार्मिक संस्कार एक दैविक संस्कार माने जाते हैं। धर्म विहीनता से पैशाचिकता तथा पशुता होती है। धार्मिक संस्कार नहीं थे तो रोज लड़ाई-झगड़े होते थे। न पिता बेटों की मर्यादा रखता, न बच्चे पिता की मर्यादा रखते। वहाँ मर्यादा का नाम ही नहीं था, क्योंकि शिक्षा और संस्कार दोनों ही नहीं थे।

प्रातःकाल होते ही एक भाई दूसरे भाई को ऑर्डर देता कि दुकान जाओ, दुकान खोलना और वह उलाहना देता- क्या मैंने ठेका ले रखा है, क्या मैं अकेला ही हूँ, तुम भी तो जा सकते हो, तुम काहे को हो और फिर आपस में जवाब-सवाल होते, युद्ध होता, लड़ाई होती। और तो और महिलाओं के भी वही संस्कार। सो कर के ही 9 बजे उठती थीं। जो 9 बजे सोकर उठेगा, अब समझ लेना वहाँ का मंगल मुहूर्त कैसा होगा ? मंगल नहीं दंगल, के रूप में था।

यदि सास जगाने जाती बहू के लिये तो बहू उसके लिए लात मार देती। बहू कहीं सास के लिये जगाने जाती तो गालियों से स्वागत होता था। कोई किसी को जगाने की हिम्मत नहीं करता था और कोई उठता जैसे-तैसे तो ऑर्डर (हुकुम) चलाया जाता था। वहाँ ऑर्डर प्रधान था, काम नहीं। और ध्यान रखना ऑर्डर और आज्ञा से कोई काम नहीं हुए, प्रार्थना से काम हुए हैं।

दुकान में भी आवक कम, क्योंकि जहाँ पर झगड़े होते हैं, वहाँ पर शैतान निवास करता है। वहाँ देव और दैविक शक्तियाँ निवास नहीं करती हैं। विसंवाद ही विसंवाद रहते हैं। एक दिन ऐसा आ गया कि पिताजी की भावना हुई सबसे छोटा बेटा है, सभी ने जैसे-तैसे बैठकर विचार बनाया कि अंतिम बेटा है, इसकी भी शादी करके फुर्सत हो जायें। उसके योग्य कन्या की खोज हुई और योगायोग एक धार्मिक माँ-पिता के धार्मिक संस्कारों में पली-पुसी कन्या का विवाह सातवें बेटे के साथ हो गया।

शादी के बाद वह कन्या अपने पति के घर आई, बहुत सारी भावना सँजोकर लाई थी वह। शादी हो गई है तो पति के साथ भगवान की पूजा करेंगे, पति के साथ तीर्थाटन करेंगे, गुरुजनों को आहार देंगे, साधर्मी लोगों की सेवा करेंगे। बहुत सारी भावनायें थीं उसकी, लेकिन आने के पहले दिन से ही समस्या दूसरी हो गई। पहले ही दिन देखा कि प्रातःकाल 9 बज गये और अभी तक कोई सोकर ही नहीं उठा। लंबी इंतजारी, वह घबरा गई। इंतजारी काफी समय तक की, क्योंकि वह नई बहू थी। अब वह संकोच, डर, अपरिचित होने के कारण सहमी-सहमी-सी देखती रही, जैसे-तैसे सभी उठे। लेकिन

मंगल मुहूर्त के साथ नहीं, दंगल मुहूर्त के साथ। तो सातवीं बहू को बहुत बड़ा आश्चर्य था कि अब पता नहीं क्या होगा ?

कहीं ऐसा न हो कि झगड़े शब्दों का उल्लंगन कर जायें। अच्छा रहा कि यहाँ तक ही रही, आगे न बढ़ पाई। देखा गया कि सब एक–दूसरे पर निगाहें लगाये रहे, एक–दूसरे की इंतजारी में रहे। जो काम 30 मिनिट में हो सकते थे, घंटों–घंटों में भी पूरे नहीं हुए। 12–1 बजे करीब भोजन का ठिकाना लगा और वह घर शायद एक श्मशान से भी अधिक बदतर गया–बीता था। वहाँ पर कूड़े–कचरे के ढेर लगे थे। कहीं कपड़े पड़े, कहीं बर्तन पड़े, कहीं जूठन पड़ीं, क्योंकि वहाँ की व्यवस्था अनोखी थी। सभी के काम एक–एक के हिसाब से बँटे हुए थे। किसी का झाडू लगाने का काम था, तो किसी का बर्तन साफ करने का काम था, तो किसी का वस्त्र धोने का काम था, तो किसी की भोजन बनाने की ड्यूटी थी।

सभी की अपनी–अपनी ड्यूटी थी, वह प्रतिदिन बदलती रहती थी। 12–1 बजे सभी भोजन के लिए बैठे। उस नई वधू के समक्ष भी भोजन की थाली रखी गई। भोजन को देखते ही बहू की भूख समाप्त हो गई। यद्यपि भूख तो पहले ही समाप्त हो गई थी, क्योंकि जो रोज भगवान के दर्शन करता हो और फिर प्रातःकाल का अमंगल मंगल के स्थान पर मिल जाये तो फिर एक समस्या और हो सकती है कि ऐसी अवस्था में भोजन कैसे हो सकता ? सामने रखी थाली भी देखी गई तो उसमें भी स्वार्थ तत्परता थी।

छह बेटों के सभी के अपने–अपने अलग–अलग कमरे थे। अपने कमरे की सफाई प्रधान रूप से की जाती थी, बाकी तो इस कोने का कचरा उस कोने में और उस कोने का कचरा इस कोने में कर दिया गया था। जब कपड़ों का नंबर आता तो अपने पति और बेटों के ही कपड़े साफ किये जाते थे, शेष के निचोड़ कर सूखने डाल दिये जाते थे, जब कभी बर्तन का नंबर आता तो साफ–सुथरी थाली सिर्फ अपने पति तथा बेटों की रहती थी, बाकी तो बिना धुली तथा बिना माँजी रहती थी। भोजन की भी यही पद्धति थी कि अपने पति

व बच्चों के लिये सही भोजन कराया जाता था, बाकी का कच्चा जला भोजन रहता था।

सोच लीजिए, अब उस परिवार की कहानी कहाँ से कहाँ तक होगी और कैसी होगी ? छोटी बहू ने सब कुछ देखा, पर भोजन नहीं किया। उन लोगों ने यही समझा कि नई बहू है, संकोचवश इसने भोजन नहीं किया। एक दिन–दो दिन निकल गये। बहू ने सोचा कि इस प्रकार से काम नहीं चलेगा, मुझे शायद कुछ दूसरे तरीके निकालने पड़ेंगे, कुछ उपाय तथा विधि भी खोजनी पड़ेगी तो बहू ने सास की सेवा करना शुरू कर दिया।

सबसे पहले वह सास के पास गई और पैर दबाने शुरू कर दिये। पैर छूते ही सास बेहद खुश हो गई। मन ही मन सोचने लगी कि अभी तक मेरी एक भी बहू ऐसी नहीं थी, जिसने मेरे पैर छुये हों और ये बहू क्या है ! ऐसा लगता है कि बहू के रूप में ये तो मेरे घर में कोई देवी आ गई। मुझे इतना सम्मान दे रही है और सेवा करने के लिये तैयार है।

नई बहू ने पैर दबाते–दबाते कहा– माँ जी ! आज से जो आपके नंबर का काम है, वह अब आप नहीं करेंगी, मैं करूँगी। और उसने सास को कोई काम नहीं करने दिया, सास का पूरा काम उसने सँभाल लिया। दूसरे दिन वह अपनी जेठानी के पास पहुँची और उससे भी कहा– दीदी, आप भी कल से कोई काम नहीं करेंगी। आपके नंबर का काम मैं करूँगी। मेरी शर्त मात्र इतनी है कि काम तो मैं सब कुछ करूँगी, लेकिन जो मैं कहूँगी, वह आपको मानना होगा।

उसने कहा– ठीक है। जो आलसी हों, वे खुश हो जाते हैं– हाँ, अच्छा हुआ, आराम करने के लिए मिला, काम दूसरा कर ले। और उस नई बहू ने एक–एक करके सभी के काम अपने हाथ में ले लिये और सभी को एक शर्त में बाँध दिया कि मैं जो कहूँगी, वो आपको करना है। अब तो उस घर में शांति का वातावरण छा गया। सारे मोहल्ले में शांति ही शांति छा गई। जहाँ पर गाजे–बाजे बजते थे, जहाँ पर अनेक गालियों के गीत गाये जाते थे, जहाँ पर अनेक

प्रकार की चीख और चिल्लाहट होती थी, वहाँ तो कुछ भी आवाज नहीं आई। मोहल्ले के लोग आ-आकर देखने लगे कि बात क्या है ?

सास कहती कि ये सब नई बहू का चमत्कार है। सारे काम आज उसने ही किये हैं और दूसरे सभी लोगों के लिए बोल दिया कि मैं जो कहूँगी, वह तुम्हें करना है। अब न जाने क्या कहेगी ? अब बहू ने दूसरे दिन क्या किया ? आठ धोती और आठ दुपट्टे, आठ साड़ियाँ सोले में सूखने के लिए डाल दीं। प्रातःकाल सभी को छह बजे जगा दिया। अब सभी जागिये, णमोकार मंत्र आता है क्या ?

णमोकार मंत्र क्या कहलाता है ? णमोकार मंत्र ?

ठीक है, मैं बोलती हूँ। आप सभी पहले उसे बोलना सीखें। सभी ने णमोकार मंत्र का उसके साथ पाठ किया। बड़ी खुशी, बड़ा आनंद और सबसे बड़ा आनंद मोहल्ले वालों में हो रहा था। सब लोगों के कान में सुनाई पड़ रहा है णमोकार मंत्र।

बहू ने कहा- सभी लोग स्नान कर लीजिए। जहाँ पर महीनों-महीनों स्नान नहीं होता था, आज तो सभी को एक साथ स्नान करना है। स्नान किया गया, स्नान करने के उपरांत कहा- शुद्ध वस्त्र पहनना है। सभी ने शुद्ध वस्त्र पहने। बहू ने सभी के हाथ में चावल दे दिये। सभी ने कहा- क्या करना है इसका ? अभी मत पूछो क्या करना है ? मैंने कहा- जो मैं कहूँगी, वह करना है, बतलाऊँगी क्या करना है। अभी तो हाथ में चावल ले लीजिये। सभी सोच रहे थे क्या किया जा रहा है, कौन-सी विधि, कौन-सा मंत्र, कौन-सा यज्ञ हो रहा है ? क्या कार्यक्रम हो रहा है, कुछ समझ में नहीं आ रहा।

बहू सबको लेकर मंदिर में पहुँच गई और ॐ जय..जय..जय.. निःसही निःसही... निःसही... नमोऽस्तु...नमोऽस्तु...नमोऽस्तु... ! सब देखते रहे क्योंकि किसी को याद ही नहीं था। मंदिर में देखते हैं, कौन-सा मंदिर है ? क्योंकि कभी मंदिर गये नहीं थे, इसलिये पता नहीं था कौन से भगवान हैं, जिसके लिए

वंश परम्परा से संस्कार न मिले हों, वह भगवान को भी भूल जाता है। उसे पता नहीं रहता कि मेरे भगवान हैं कि नहीं और वह एक ऐसा ही परिवार था।

मंदिर में भी सारे लोग देखते रह गये कि आज क्या बात है ? बहुत बड़ा जुलूस आया है, पूरा परिवार, पूरा कुटुम्ब- सारे लोग देखते रह गये और हँसने वाले हँसे, प्रशंसकों ने प्रशंसा की, उपहासकारों ने उपहास किये, लेकिन सब वचन से बँधे हुए थे, इतना तो अच्छा था। बहू ने कहा- दर्शन करके चावल चढ़ा दीजिये तो सभी ने चावल चढ़ा दिये। उसने कहा- नमस्कार कर लीजिये, तो सभी ने नमस्कार कर लिया। बहू ने भगवान की स्तुति बोली, सभी ने मंदिर की परिक्रमा लगाई और सभी घर वापिस लौट कर आ गये, सबको बड़ी खुशी थी।

सबको आश्चर्य भी था कि पहली बार मंदिर गये। जो पहली बार मंदिर जाता है, ध्यान रखना पहले दिन का मंदिर, पहले दिन की जप, पूजा, तीर्थयात्रा, प्रतिक्षा, दर्शन, दीक्षा का पहला दिन, पहला श्रम बहुत श्रेष्ठ होता है। उस जैसा आनंद कभी फिर आयेगा, भरोसा नहीं। घर में बहू ने कहा- किसी से कोई छुए नहीं, सावधानी रखी गई, मंदिर में भी किसी सामग्री को नहीं छुआ, घर में आने के उपरांत बहू ने अपने हाथ से पानी भरा, आटा पीसा, भोजन तैयार किया।

भोजन तैयार हो जाने के उपरांत दरवाजे के आगे चौक पूर लिया और सभी के हाथ में (किसी के) कलश, सेव, श्रीफल, मौसम्बी दिया, सभी खड़े हो गये। भाग्य से एक मुनि वहाँ से आ गये। बहुत बड़ा आश्चर्य था, सभी को अटपटा लग रहा था, संकोच-शर्म लग रही थी। पहले दिन जब कोई व्यक्ति आहार देता है तो उसका हृदय धक्-धक् करता है, घबराता है, ऐसा करूँ, वैसा करूँ ? क्या करें ? कोई कहता शुद्धि बोला। बस उस परिवार की भी ऐसी स्थिति थी, वह भी नया परिवार था।

एकस्दीपः तमोहन्ति।

एक संस्कारवान व्यक्ति हो तो अनेक दीपों को जला देता है, सबको संस्कारवान बना देता है। बहू ने मुनिराज को देखा तो कहा– महाराज आ रहे हैं, सभी लोग मेरे साथ बोलेंगे, हे स्वामिन् ! नमोऽस्तु...नमोऽस्तु...नमोऽस्तु...। सबने बोलना शुरू किया।

महाराज का नियम था कि आठ जोड़े जहाँ पड़गाहने के लिए खड़े होंगे, वहाँ ही आहार करेंगे, अन्यथा नहीं। महाराज आठ जोड़े खड़े देखकर वहीं खड़े हो गये। बहू ने आगे होकर परिक्रमा लगाई, सभी उसके पीछे हो लिये। सभी ने दरवाजे पर पहले पैर धोये, शुद्धि बोली, घर के अंदर प्रवेश किया, उच्चासन दिया, पाद-प्रक्षालन व पूजा की नवधा भक्तिपूर्वक आहार हुआ।

आहार के पश्चात् महाराज प्रस्थान कर गये। पश्चात् सभी लोगों ने भोजन किया। अब तो सभी के विचार बदल गये कि आज जैसा भोजन कभी नहीं किया। आज तो बड़ा आनंद आ गया। ऐसा लगता है कि आज कोई नया जन्म हो गया है, जादू हो गया। आपस में बैठे चर्चायें कर रहे थे कि क्या कारण है ? छोटी बहू ने कहा– आज भगवान के दर्शन किये हैं तथा गुरुओं को आहारदान दिया है, पवित्र भोजन किया, शुद्ध भोजन किया, उसका परिणाम है। अब तो सभी के अंदर ऐसे भाव बन गये कि ऐसा तो हम रोज कर सकते हैं। रोज दर्शन करेंगे, रोज संतों के लिये आहारदान देंगे–

जैसा खावे अन्न वैसा होवे मन।
जैसा पीवे पानी वैसी होवे वानी।।

शुद्ध भोजन हुआ तो विचार भी सभी के शुद्ध हो गये। परस्पर में प्रेम वात्सल्य जग गया एवं शांति और आनंद की वर्षा हो गई। वह घर जो नरक था, स्वर्ग बन गया और जितने भी उस घर में लोग थे उनमें धार्मिकता आ गई। इस प्रकार एक बहू, एक गृहिणी सारे घर के लिये स्वर्ग बना सकती है, बशर्ते संस्कारवान हो, धार्मिक हो, धर्म, ज्ञान सहित हो।

इसलिये साहित्यकारों ने कहा– गृहिणी का अर्थ जो संस्कारवान हो। व्यक्ति प्रायः धन-सम्पदा, दहेज की विनती करता है, लेकिन गुणों को कोई

नहीं देखता। देखना क्या चाहिए तो उसके गुणों को देखना चाहिए, उसके धर्म को देखना चाहिये, संस्कारों को देखना चाहिए, जो प्रधान हैं। हम उसके लिए गौण कर देते हैं। धन तो हाथ का मैल है, संस्कारवान् व्यक्ति अपना कमा लेगा। आप कितना दहेज देंगे, इसमें भी कई गुनी मात्रा में कमा लेगा, क्योंकि संस्कारवान् है। जहाँ संस्कार नहीं, वहाँ कितना भी दिया जायेगा। अंत में वह माँग चलती ही रहेगी कभी पूर्ति नहीं होगी।

पत्नी पति परायण होनी चाहिए अर्थात् शीलवती होनी चाहिए। नारी घर के लिये स्वर्ग बनायेगी, शांति एवं आनंद की वर्षा करेगी, सारे घर को सुख से भरपूर कर देगी। भले व्यक्ति का घर गरीब क्यों न हो, लेकिन शांति बरसेगी और यदि ये संस्कार नहीं हैं तो भले व्यक्ति अमीर परिवार का क्यों न हो, वहाँ शांति नहीं, दुःख ही दुःख बरसेगा। इसलिये हमारे देश की परम्परा रही, जहाँ पर पत्नी के ही लक्षण नहीं। पति के लक्षण भी समाहित किये गये।

जहाँ पर पत्नी पति के लिये परमेश्वर मानती है, सब कुछ मानती है तो पति का भी प्रथम कर्तव्य है कि वह अपनी पत्नी का यथायोग्य सम्मान रखे, क्योंकि पत्नी सारे गृह को चलाने वाली संचालिका है। जिसके लिए हम यूँ कहते हैं कि वह एक इंजन है। जैसे बिना इंजन के कोई ट्रेन नहीं चल सकती, ठीक उसी प्रकार पत्नी के बिना घर का संचालन नहीं हो सकता है, घर नहीं चल सकता है। जो सारी गृहस्थी को चला रही हो और उसका ही सम्मान तोड़ कर रखा जाये तो समझ लेना जिसका सम्मान प्राप्त हो गया है, वह अपमान के साथ अपने घर का सम्यक् प्रकार से संचालन नहीं कर सकती है।

इसलिये लक्षण दिया कि सम्मान यानि पत्नि का कभी अपमान नहीं करना। यदि आप सम्मान देंगे, उसकी मर्यादा ध्यान रखेंगे तो वह आपकी पूजा-अर्चना करेगी, क्योंकि आपने सम्मान दिया है और यदि आपने सम्मान तोड़ दिया तो वह आपकी पूजा नहीं, दूसरी पूजा कर देगी। क्योंकि पूजा दो प्रकार की होती है– एक सम्यक् पूजा, दूसरी असम्यक्। और असम्यक् प्रकार से पूजा करने के लिये लाचार हो जायेगी। इसलिये सम्मान चाहते हो

तो सम्मान देना प्रारम्भ करो। जो सम्मान देगा, उसे सम्मान मिलेगा। जो सम्मान तोड़ेगा तो उसका सम्मान टूटेगा।

पति का दूसरा कर्तव्य है कि वह पत्नी के दुख-दर्द को समझे, सुख-दुख को समझे, क्योंकि जिसने अपना सारा जीवन आपके लिये सौंप दिया है तो फिर आपका कर्तव्य है, आपकी जिम्मेदारी है कि उसके सुख-दुःख में सहभागिता देना। उसके सुख-दुःख का ध्यान रखना, उसका ख्याल रखना, समय-समय पर उसके सुख-दुःख की अवस्थाओं को जानना, समझना-पूछना और दुःख है तो उसे दूर करने का प्रयत्न और प्रयास करना, यह पति का दूसरा कर्तव्य है। यदि आपने दूसरों के दुःखों को दूर किया है, यदि उसकी इस बात पर ध्यान दिया तो वह तुम्हें ध्यान ही नहीं, तुम्हें प्राण भी दे देगी। शास्त्रों में उल्लेख है कि पुस्तकों में ऐसी-ऐसी पतिव्रता नारी हुईं जिन्होंने अपने पति के लिये जीवन दाव पर लगा दिया। पद्मपुराण में उल्लेख मिलता है कि राम सीता को समझाने गये तो सीता राम के साथ वन चलने के लिये तैयार हो गई।

पति की तीसरी विशेषता है कि आवश्यकता की पूर्ति करना यानि गृहस्थी का संचालन उसके हाथ में सौंपा है। यह अधिकार विश्वास के साथ सौंपना, क्योंकि यदि पति और पत्नी में ही संदेह खड़ा हो गया तो समझना शांति और प्रेम कभी उस गृह में आ नहीं सकेगा, आनन्द आ नहीं सकेगा। इसलिये यह आवश्यकता दी कि गृह की सारी जिम्मेदारी विश्वसनीयता के साथ सौंप दो। पत्नी से हिसाब-किताब नहीं लिया जाता और न पत्नी पति से हिसाब-किताब लेती है। यह बात अलग है कि इन सारी बातों का यथायोग्य ध्यान रखते हैं, लेकिन विश्वास के साथ न कभी पत्नी पति के लिये और न कभी पति पत्नी के लिये धोखा देता है। इसलिये जिम्मेदारी, अधिकार का विधिवत् पालन किया जाता है।

विशेषता है कि जिम्मेदारी सौंपी है तो आवश्यकता की पूर्ति करें क्योंकि गृह संचालन करना है तो उसके लिये कौन-सा बर्तन चाहिए, वस्त्र चाहिए,

सामग्री चाहिए। यदि उन सामग्रियों की पूर्ति होती रहेगी तो वह अपने अधिकार का, अपने दायित्व का सम्यक् प्रकार से पालन कर सकेगी। अन्यथा वह अधिकार को पालन करने में समर्थ नहीं हो सकेगी।

पति का चौथा गुण है स्वदार संतोष व्रत- तात्पर्य है अपनी पत्नी में संतुष्ट रहे। पत्नी का गुण है कि वह अपने पति में संतुष्ट रहे। यदि इन सारी बातों का ध्यान रखा गया तो वह परिवार सुख-शांतिमय बनेगा। वहाँ पर धर्म की गंगा बहेगी, हर्ष की गंगा बहेगी, सम्मान-आदर्श की प्रतिष्ठा बढ़ेगी, क्योंकि वहाँ इन सारी बातों का ध्यान रखा गया, लेकिन जहाँ मर्यादाओं का उल्लंघन हो गया तो समझना वहाँ पत्नी धार्मिक नहीं होगी, कुलीनता का परिचय नहीं देगी।

जो शिक्षा व संस्कार के क्षेत्र में अधूरी रहेगी, वह पति के लिये परमेश्वर नहीं मानेगी और फिर वह परमेश्वर का ध्यान नहीं, पर्स का ध्यान रखेगी। पर्स का ध्यान होना अलग बात है, परमेश्वर का ध्यान अलग बात है। महिलायें पर्स यानि रुपये-पैसे का ध्यान रखती हैं, लेकिन परमेश्वर का यानि पति का ध्यान नहीं रखतीं।

हमारी एक संस्कृति रही कि पत्नी आदर्श संस्कारों से पले-पुसे। उसे मात्र एक अपने परमेश्वर पति ही दिखे, शेष विषय में उपेक्षा रहे। इसलिये एक परम्परा जारी है कि पत्नी का अपने पति के प्रति इतना समर्पण रहता है कि वह अपने पति के अलावा न किसी को अपना चेहरा दिखाती और न किसी के चेहरे को देखना चाहती है। घूँघट परम्परा यही थी। पतिव्रता नारी किसी को न अपना चेहरा दिखाती और न देखना चाहती है। आज वह परम्परा दिन-प्रतिदिन समाप्त होती जा रही है। आज पति-पत्नी एक साथ आ जाये, तो पूछना पड़ता है कि आप कौन हैं ?

अभी किसी गाँव में एक नव विवाहित दम्पती आशीर्वाद लेने आये तो मैं समझ नहीं सका कि ये कौन है ? क्योंकि उनके गले में पल्ला था तो मैंने पूछा कि ये आपकी बहन हैं या रिश्तेदार ? दोनों हँसने लगे।

मैंने कहा- क्या बात है ? तो बोले- महाराज ! कल ही तो शादी हुई। पहले ही दिन आपकी इतनी मर्यादा समाप्त हो गई है तो आपकी आने वाली जिन्दगी का समय कैसा होगा ? पहले दिन ही आपका संकोच, शर्म, डर, भय, समाप्त हो गया तो आने वाला समय संभवतः बहुत गिरा हुआ ही होगा, इसलिए भारतीय संस्कृति की इतनी मर्यादायें हैं।

भारतीय परिधानों का महत्त्व है कि उसमें माँ, बेटी, बहिन दिखती है, लेकिन पाश्चात्य परिधानों का जीन्स, टी-शर्ट इनका प्रभाव अब आप देखिये, उसको आप माँ, बहिन या बेटी के रूप में देख पाओगे ? पाश्चात्य संस्कृति और भारतीय संस्कृति में बहुत बड़ा अंतर है तो जहाँ धार्मिक संस्कार नहीं होते वहाँ पर ये हालात हो जाते हैं और परिणाम निकलता है कि शादी हुए ज्यादा समय नहीं हो पाता और न्यारेपन की बात पहले आ जाती है, क्योंकि घर जायेंगे तो सासू की सेवा करनी पड़ेगी, उसके कन्ट्रोल में रहना पड़ेगा। धीरे-धीरे समय इतना बिगड़ता गया कि व्यक्ति कामचोर हो गया।

एक सेठ का इकलौता पुत्र था। बहू पढ़ी-लिखी थी, लेकिन संस्कारवान नहीं थी, माँ झाडू लगा रही थी। बेटे ने देखा- जिस माँ ने मुझे पाला-पोसा और मेरे रहते मेरी माँ झाडू लगाये, ये अच्छा नहीं है और वह माँ के पास पहुँच कर बोला- अब तुम्हारी उम्र झाडू लगाने की नहीं है। शरीर थक चुका है, झाडू मुझे दे दो, मैं लगाऊँगा।

माँ बोली- नहीं, नहीं बेटा ! मैं लगा लूँगी। दोनों की चर्चाओं को सुनकर बहू ने छत से पूछा- क्या बात है ? चूँकि वह समझ गयी कि झाडू लगाने के लिये झगड़ा हो रहा है। उसने वहीं से कहा कि मत झगड़ो, एक दिन आप लगाना, एक दिन आप लगाना।

सोचो आज की बहू अपने पति और सास को शिक्षा देती है जबकि भारतीय संस्कृति की नारी ऐसी नहीं होती। वह तो स्वयं आगे आती है और कहती है कि न आप लगायें न आप, यह काम तो मेरा है। यह भारतीय संस्कृति में पली-पुसी नारी होती है। पाश्चात्य संस्कृति में पली नारी अभिमान

में रहती है, सेवा में पीछे रहती है, इसलिये शादी के दूसरे दिन वह न्यारापन चाहती है, पृथक् रहना चाहती है। यही कारण है कि उस घर में विसंवाद ही विसंवाद छा जाते हैं, शांति समाप्त हो जाती है।

एक बार की ऐसी ही बात थी कि विसंवाद को जन्म देने वाले संस्कारों में पली एक नारी ने शादी के बाद जिस घर में पैर रखा, उस घर की सारी संस्कृतियाँ समाप्त कर दीं और बच्चों का जब जीवन प्रारम्भ हुआ तो प्रारम्भ में तो वे नहीं समझ पाये, लेकिन जब वे सक्षम और समर्थ हुए, तब उन्हें पता चला कि ये हमारे भगवान हैं, मंदिर हैं। माँ के पास जाकर पूछा तो माँ की आँखों में आँसू भर आये कि बेटा ! ये संस्कार तो मुझे तुमको पहले देने चाहिए थे, लेकिन मेरी गलती रही, मैं संस्कार नहीं दे सकी। फलतः कुछ बच्चे निकले जिनमें दुर्व्यसन के संस्कार आ गये।

प्रारम्भ में माता-पिता ने ध्यान नहीं रखा, कालान्तर में वे ही बच्चे बिगड़ गये। यदि गृहिणी सही है, संस्कारवती है तो घर स्वर्ग बन सकता है। संस्कारवती नहीं है तो घर स्वर्ग नहीं बन सकता। हम उन संस्कारों के विषय में अपने कदम बढ़ायें और सम्यक् प्रकार से अपने जीवन में धारण करने का प्रयास करें।

जय बोलिये, 1008 महावीर भगवान की .... !

***

शिक्षकः वहवः सन्ति शिष्यवित्तापहारकाः।
दुर्लभाः शिक्षकाः प्रायः शिष्यचित्तापहारकाः॥

अर्थ- संसार में उदरपूर्ति के लिए शिष्यों को दिशाभ्रम करने वाले विद्वान शिक्षकों की भरमार है परन्तु शिष्यों को सरल नैतिकता का उपदेश कर सन्मार्गारूढ़ करने वाले विद्वान् अति दुर्लभ और कठिन है।

3. माता के कर्तव्य

मूर्ति का आकार तभी अच्छा आ सकता है, जबकि उसका साँचा अच्छा होगा। यदि साँचा अच्छा नहीं होगा तो आकार भी कभी अच्छा नहीं हो सकता। इसलिये प्रथम शर्त है, माँ को सुयोग्य होना पड़ेगा, धार्मिक होना पड़ेगा, नैतिकता का ध्यान रखना होगा, क्योंकि यह सब माँ के ऊपर निर्भर है।

बंधुओ ! आज की बात हम एक कहानी से प्रारम्भ करेंगे कि–

एक विशाल बियावान जंगल था। जहाँ पर विभिन्न प्रकार के पशु–पक्षी विचरण कर रहे थे। जहाँ विभिन्न प्रकार के नदी और नाले कल–कल, छल–छल की ध्वनि कर रहे थे। दूर–दूर तक देखने मात्र वृक्ष ही वृक्ष नजर आ रहे थे। यानि इतना घना वह जंगल था कि उसमें कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था तथा हरे–भरे वृक्ष और फल–फूलों से लदी हुई शाखाओं पर अनेक प्रकार के पक्षीगण कलरव कर रहे थे।

लगता है, वह बहुत शांत और मनोरम स्थान था, लेकिन निर्जन था, यानि कोई भी सामान्य प्राणी वहाँ नहीं था। एक मात्र साधना में निरत योगी और सन्यासी जन ही अपनी साधना में निरत थे। ऐसे जंगल में श्रीकृष्ण के साथ उनकी दोनों पटरानियाँ भी रथ से उतरीं और श्रीकृष्ण ने उन संत के चरणों में सिर झुकाकर नमस्कार किया। संत ने उन्हें आशीर्वाद दिया, चिरायु भव ! दोनों पत्नियों में भी पहले सत्यभामा ने नमस्कार किया। संत ने उन्हें देखा और आशीर्वाद दिया, पुत्रवती भव !

उसके पश्चात् रुक्मणी ने नमस्कार किया। जैसे ही संत पुत्रवती कहने वाले थे कि रुक्मणी ने उन्हें रोक लिया– महात्मन् ! पुत्रवती प्रायः सभी स्त्रियाँ हो सकती हैं। पुत्रवती होना मात्र पर्याप्त नहीं है। मुझे आशीर्वाद दीजिए कि मैं मात्र पुत्रवती नहीं, सुपुत्रवती होऊँ। संत खुश हो गये और उन्होंने आशीर्वाद

दिया, सुपुत्रवती भव ! लेकिन इसके साथ कहा कि पहले मातृगुणों से सम्पन्न होओ।

प्रायः संसार की सभी माँ अपने योग्य पुत्र को चाहती हैं। उनका स्वप्न होता है कि हमारे यहाँ सुयोग्य पुत्र हो, हमारे यहाँ आज्ञाशील पुत्र हो, हमारा पुत्र सारे जग में अपनी यश पताका फैलाये, हमारा पुत्र सर्वोच्च स्थान पर जाकर बैठे, हमारे पुत्र को संसार की सारी उपलब्धियाँ प्राप्त हो। क्योंकि कौन–सी ऐसी माँ होगी जो अपने पुत्र के लिए इस प्रकार से न देखना चाहती हो, जिसकी कामना–प्रार्थना न करती हो।

बंधुओ ! यह जाप तभी से प्रारम्भ हो जाती है, जबसे उसकी शादी होती है। इसीलिए शास्त्रों में जहाँ पर विभिन्न प्रकार का उल्लेख है। उसमें एक गर्भान्वय क्रिया का उल्लेख आचार्य जिनसेन महाराज ने आदिपुराण में किया कि कुलवंती जो नारियाँ हैं, वे अपनी आर्य संस्कृति के अनुसार शादी के पश्चात् प्रथम माह से ही एक उत्सव मनाती हैं, एक महोत्सव मनाती हैं और भगवान की, परमात्मा की अर्चना से उनका प्रत्येक माह गुजरता है। भगवान के स्मरण से, महान पुरुषों की कथा और कहानियों से उनका वह समय व्यतीत होता है। प्रायः उनका वह समय भगवान की आराधना–पूजा के साथ, महापुरुषों का चित्रण सुनने से, उनकी व्याख्याओं का चिंतन, आत्मचिंतन और सत्संगति में निकलता है। यह गर्भान्वय क्रिया है।

जैनशासन में महापुरुषों के और उनमें भी तीर्थंकर होने वाले महापुरुषों के गर्भकल्याणक के नाम से वे क्रियाएँ मानी जाती हैं। गर्भकल्याणक के पीछे छिपा हुआ शब्द खाली गर्भ उत्सव नहीं, महोत्सव नहीं, किन्तु वह कल्याणक के साथ मनाया जाता है। स्वर्ग के देवतागण तीर्थंकर की माँ के पास आते हैं और वह दिन, वह क्षण, जिस समय गर्भ अवतरण क्रिया होती है, कोई जीव चलकर माँ की कुक्षी में आता है। उस समय देवता गण स्वर्ग से आते हैं और वहाँ पर यह उत्सव भगवान के माता–पिता के सम्मान के रूप में, उनकी अर्चना–पूजा साथ करते हैं तथा सारे नगर में हर्ष और खुशियाँ मनायी जाती हैं।

शास्त्रों में यहाँ तक उल्लेख मिलता है कि गर्भ ही क्या, गर्भ के छह माह पहले से स्वर्ग के देव एक ऐसी व्यवस्था कर जाते हैं कि जहाँ पर निरन्तर रत्नों की वर्षा होती है। और उसमें सबसे महान रत्न है- हर्ष और खुशी क्योंकि धातु, कागज और पत्थर के रत्न से प्रायः हर व्यक्ति परिचित है, लेकिन शायद वह रत्न, रत्न नहीं, जो रत्न हर्ष न उत्पन्न कर सके, आनंद-खुशी न दे सके। फिर इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने नगरी में बाहर के रत्न तो बरसाये ही थे, पर उनके पीछे मानो उस हर्षरूपी रत्न की वर्षा भी की थी।

आत्महितैषी भव्यात्माओ ! हर्ष का उद्‌गम जब भी होता है, परमात्मा के द्वार से होता है। परमात्मा की अर्चना-पूजा से, नाम जाप से होता है और जब धर्म की चर्चा घर-घर उत्पन्न हो जाती है, वहां पर मंगल, हर्ष उत्पन्न होता है, सुप्रभात होता है, जिससे हर घर में आनन्द-हर्ष की वर्षा होती है।

अभी तीर्थंकर गर्भ में भी नहीं आये, लेकिन छह माह पहले से ही रत्नों की वर्षा प्रारम्भ हो जाती है और साढ़े तीन करोड़ रत्न एक समय में बरसाये जाते हैं और ऐसे एक दिन के तीनों पहरों में रत्नों की वर्षा होती है और इसके पश्चात् गर्भ कल्याणक के दिन, अवतरण के दिन स्वर्ग के इन्द्र स्वयं उपस्थित होकर तीर्थंकर की माँ-पिता का आदर-सम्मान करके, विभिन्न देवियों को माता की सेवा में नियुक्त करके चले जाते और विभिन्न देवों को पिता की सेवा में नियुक्त करके जाते।

बंधुओ ! उस समय जो भी देवांगनायें थीं, सभी तीर्थंकर की माँ की सेवा करतीं और उनके मनोविनोद धार्मिकता के साथ चलते। धार्मिक विचार, चिंतवन के साथ सारा समय व्यतीत होता।

कहा जाता है कि आने वाली संतान का ही पुण्य रहता है कि गर्भ में आते ही सारे के सारे कार्य मंगल के साथ होते हैं, जिससे घर में मंगल ही मंगल छा जाता और यदि बच्चे का पाप का उदय है तो उसके आते ही अपशकुन प्रारम्भ हो जाते हैं। घर में विचार और भावनायें भी प्रायः खराब होने लगती हैं।

राजा श्रेणिक की रानी चेलना की कुक्षी में जब कुणिक आया तो महारानी चेलना की बहुत कलुषित भावना उत्पन्न हुई, क्योंकि कुणिक का जीव वह था, जिसने पूर्वभव से वैर बाँध रखा था। महारानी की इच्छा होती कि मैं अपने पति का हृदय रक्त-रंजित, रक्त से भीगा हुआ देखूँ तो मुझे संतोष मिले। वह देखने के लिए बार-बार लालायित रहती।

रानी चेलना विवेकी थी, ज्ञानशीला थी। वह समझती थी कि यह शुभ शकुन नहीं, अशुभ शकुन है। प्रतीत होता है, मेरे गर्भ में कोई खराब संतान आई है। मेरे गर्भ से सम्भवतः कोई ऐसा पुत्र जन्म लेने वाला है जो महाराजा श्रेणिक के प्रति शुभ सूचक नहीं है, लेकिन इस भय से राजा से कुछ नहीं कहती थी कि इस समाचार को सुनकर महाराज क्या सोचेंगे ? मेरे प्रति क्या व्यवहार रखें ? महारानी चेलना शांत रहती, लेकिन इच्छा एक चिंता का रूप धारण कर लेती। जब इच्छाओं की पूर्ति नहीं होती है तो ऐसी चिन्ता होती है और किसी ने कहा भी है-

चिन्ता चिता द्वयोर्मध्ये, चिन्ता एव गरीयसी।
चिता दहति निर्जीवकं, चिन्ता दहति सजीवकम्॥

अर्थात् चिंता और चिता दोनों में इतना अंतर है कि चिंता में बिन्दु है, चिता में नहीं, लेकिन फिर भी दोनों के अर्थों में बहुत बड़ा अंतर है। चिता शव को/निर्जीव शरीर को जलाती है, पर चिंता सजीव प्राणी को जलाती है। देखा भी जाता है कि चिंताग्रस्त व्यक्ति का शरीर सूखता है, भूख नहीं लगती, नींद नहीं आती। उसका समय शांति से व्यतीत नहीं होता, चिंतामग्न रहता है। चिंता का विषय उसके अंदर बार-बार घूमता रहता है। कल्पनाओं में वह डूबा रहता है।

महारानी चेलना एक ऐसी चिंता के मध्य में उतर गई, जिससे महारानी चेलना इस दुविधा में जलने लगीं। ये विकार मेरे मन में क्यों आते, कौन-सा मेरे कर्म का उदय है। महाराज श्रेणिक हमारे पति हैं और उनके प्रति ऐसी गलत धारणा, गलत विचार, ये तो उचित नहीं है, लेकिन क्या किया जाये।

जितना उनके लिये सोचती थीं, उतनी ही मात्रा में वे ही विचार अधिक आविर्भूत होते थे।

एक दिन महाराजा श्रेणिक ने रानी चेलना को उदास अवस्था में देखा, उनका क्षीण शरीर देखा तो महारानी से पूछा कि हे महारानी ! आपका शरीर कृश क्यों हो रहा है ? आपको किस बात की चिंता है ? कोई तकलीफ, कष्ट है तो मुझे बतायें, कहें। अवश्य ही हम उसे दूर करने का प्रयत्न करेंगे। आपकी हर इच्छा की पूर्ति हम करेंगे, आप निःसंकोच होकर कहें। लेकिन बंधुओ ! रानी चेलना साहस नहीं जुटा पाई। उनकी आँखों में आँसू भर आये।

महाराजा श्रेणिक महारानी को थामते, सिर पर हाथ रखते और पुनः कहते– आप डरो मत, घबराओ नहीं। कहो, आपको क्या चिंता है ? क्या परेशानी है ? क्या कहना है ? महारानी चेलना ने कहा– महाराज ! जब से मेरे गर्भ में इस जीव ने अवतार लिया है, तब से न जाने क्यों मेरे मन में कलुषित विचार उत्पन्न हो रहे हैं, और चेलना सारी बात कह देती है।

लेकिन राजा श्रेणिक अपने पुत्र व्यामोह के कारण कुछ भी नहीं सोचते और अंत में जाकर रानी की इच्छापूर्ति के लिए बनावटी रंग को लगाकर दिखा देते हैं। मेरा यह फटा हुआ हृदय है और बहता हुआ रक्त है। आप इसको देख कर संतुष्ट हो जायें।

इसी प्रकार जिस समय कंस का जन्म हुआ था तो उसकी माता के अंदर भी ऐसे ही विचार आये थे। कहा जाता है कि जब कोई गलत संतान गर्भ में होती है, वह अपनी सूचना देती है और जब सुयोग्य संतान जन्म लेती है, तो वह भी अपनी सूचना देती है। महापुरुषों का जन्म होता तो शुभ स्वप्न आते हैं, शुभ विचार होते हैं। तीर्थंकरों की माता के 16 स्वप्नों का उल्लेख मिलता है।

तीर्थंकर की माँ एक ऐसी माँ है। जिस समय वे गर्भ में आते हैं तो माँ की इच्छा होती कि मुझे कोई धार्मिक चर्चायें सुनाये, भगवान का स्तोत्र, पंच परमेष्ठी की स्तुति सुनाये। वे निरन्तर ध्यान करतीं, उनका इसी में मन लगता है। बहुत–सी मातायें ऐसी होती हैं, जिनकी पूजा, तीर्थयात्रा, लोकोपकार के,

दीन–दुःखी के प्रति करुणा के, दूसरों के दुःखों को दूर करने के भाव होते हैं, तो समझ लेना गर्भस्थ जो शिशु है, वह निश्चित पुण्यशाली है, भाग्यशाली है, सुयोग्य संतान होने वाली है।

कि जिसके जन्म होने से पहले ही यह संकेत प्रारम्भ हो रहे हैं। जैसे सूर्य का उदय पूर्व दिशा से जब होगा, तब होगा, लेकिन उसके पहले ही, पूर्व दिशा में लालिमा छा जाती है। ठीक इसी प्रकार होने वाली संतान जन्म के पूर्व, पूर्वावस्था में ही संकेत दे देती है और तो क्या, यहाँ तक उल्लेख मिलता है कि गर्भ में रहने वाली संतान भी ज्ञानवान होती है, उसके पास मन होता और प्रायः यह सारी बातों को समझती है, जानती, सीखती है।

महाभारत में अर्जुन के विषय में उल्लेख आया है कि अर्जुन और उसकी पत्नी सुभद्रा, जिसे अर्जुन अपनी राजनीति के विषय में रात्रि के समय में सारी की सारी जानकारी दे रहे थे कि, चक्रव्यूह की रचना किस प्रकार से होती है, वीर योद्धा किस प्रकार चक्रव्यूह की रचना करता है और उसमें वह कैसे प्रवेश करता है कि सारी चर्चा सुनते–सुनते सुभद्रा की नींद लग गई और अर्जुन भी सो गये, बात अधूरी रह गई।

चक्रव्यूह युद्ध में एक प्रकार की विशेष संरचना है। वहीं पर योद्धागण विभिन्न प्रकार से प्रवेश करके विजय पताका फहराते हैं। प्रवेश करने की विधि तो सुभद्रा सुन पाई थी, लेकिन वहाँ से निकलने की विधि नहीं सुन पाई थी। उल्लेख आता है कि सुभद्रा ने अभिमन्यु को जन्म दिया और वह जब शनैः–शनैः बड़ा हुआ तो वह भी युद्धस्थल पर गया और वहाँ जाने के उपरान्त अपने ही कौरव पक्ष के लोगों के सम्मुख जब युद्ध में उतरा। तब वहाँ चक्रव्यूह की रचना की गई थी, अभिमन्यु अपनी कला–कुशलता से चक्रव्यूह रचना को भेद कर उसके अंदर प्रवेश तो कर गया।

लेकिन बंधुओ ! उसे प्रवेश तक की ही विधि ज्ञात थी, इसके आगे की विधि–ज्ञात नहीं थी, क्योंकि सुभद्रा नहीं सुन पाई थी, इसलिए उस संस्कार से अभिमन्यु उस रचना के अंदर प्रवेश तो कर गया, लेकिन विजय प्राप्त

करके बाहर नहीं लौट सका और उसे पराजित होना पड़ा। वहाँ इस बात को स्पष्ट कहा गया है कि ये सब संस्कार अभिमन्यु के लिए माँ के गर्भ से ही प्राप्त हुए थे।

बंधुओ ! कुलवंती नारियाँ, गृहिणी जिनके अंदर धार्मिक संस्कार होते हैं, जो नैतिक संस्कारों, धार्मिक संस्कारों के मध्य रहती हैं, उसका प्रभाव गर्भ में रहने वाले शिशु पर पड़ता है। जो भगवान का जाप करती है, उसका प्रभाव उसके उदरस्थ शिशु पर होता है। यदि माँ के संस्कार गलत हों तो फिर उसके संस्कार बच्चे पर भी गलत पड़ते हैं।

किसी व्यक्ति ने एक बार मुझसे पूछा कि महाराज राम हुए ? मैंने कहा– हाँ हुए। उसने पूछा– कब हुए ? मैंने कहा– चतुर्थकाल में हुये। ये महावीर हुए, हनुमान हुए, आदिनाथ तीर्थंकर हुए, कब हुए ? वे सब चतुर्थकाल में; लेकिन इस काल में कोई महापुरुष क्यों नहीं हुये ? मैं विचार में पड़ गया। सोचो, ऐसा क्या कारण है कि इस काल में कोई भी महापुरुष पैदा नहीं हुये।

जब मैंने आदिपुराण को उठा करके देखा तो एक ही उत्तर उससे ज्ञात हुआ, एक ही रहस्य निकला कि उस समय की जो माँ थी, वह अपने बच्चे के लिए जन्म देने के पहले 'सुयोग्य पुत्रवती भव' का वरदान माँगती थी। ऐसी प्रार्थना करती, भावना रखती थी और निरन्तर ऐसी तपस्या करती थी। लेकिन तपस्या का अर्थ इतना ही नहीं, कि किसी पहाड़ पर जाकर बैठ जाना, भोजन–पानी का त्याग कर देना। नहीं, वह तपस्या इस बात की करती थी कि मेरे यहाँ जो पुत्र हो, वह सुयोग्य हो और सुयोग्य पुत्र वही होगा, जिसकी माँ सुयोग्य होगी।

बंधुओ ! मूर्ति का आकार तभी अच्छा आ सकता है, जबकि उसका साँचा अच्छा होगा। यदि साँचा अच्छा नहीं होगा तो आकार भी कभी अच्छा नहीं हो सकता। इसलिये प्रथम शर्त है, माँ को सुयोग्य होना पड़ेगा, धार्मिक होना पड़ेगा, नैतिकता का ध्यान रखना होगा, क्योंकि यह सब माँ के ऊपर निर्भर है। गर्भ में आने वाली संतान के अवसर पर माँ के लिए कितनी कठिन तपस्या करनी पड़ती है।

आदिनाथ भगवान की पूजा में उल्लेख मिलता है कि माँ इस मौके पर कितनी सारी बातों का ध्यान रखती है। आज भी जब हम किसी नर्सिंग होम से सम्पर्क बनाते हैं, पूछते हैं तो जानकारी मिलती है कि माँ के लिए किन–किन बातों का ध्यान रखना पड़ता है। माँ के लिए खाने–पीने, उठने–बैठने, चलने–फिरने, हर तरह से व्यवहार को संयमित रखने का निर्देश है, लेकिन अंतर इतना ही है कि आज वे सारी शिक्षायें मात्र स्वास्थ्य तक हैं।

प्राचीन काल की शिक्षायें स्वास्थ्य के साथ संस्कार डालने की भी थीं। इतना अंतर आ गया। इसलिए आज के समय कोई भगवान नहीं बन पा रहा है, महान पुरुष नहीं बन पा रहा। आज का जन्मा हुआ व्यक्ति मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता, क्योंकि माँ के अच्छे संस्कार नहीं मिल पाते। प्रायः ऐसा देखा जाता है कि गृहिणी माँ कहीं किसी बाजार में घूमने जायेगी, तो कभी पिक्चर देखने जायेगी।

अब आप सोचिए, जो बाजार घूमने जा रही है, जो होटलों में खाने जा रही है, जो विभिन्न प्रकार की पिक्चरों को देख रही है तो ऐसे लोगों का प्रभाव और ऐसे वातावरण में रहने का प्रभाव गर्भस्थ शिशु पर क्या पड़ेगा ? जिसके लिए खाने की मर्यादा नहीं, किसी भी प्रकार के संस्कार नहीं हैं, वह संस्कारवान् पुत्र को कैसे जन सकती है ?

बंधुओ ! पूज्य गुरुजन आचार्य विमलसागरजी महाराज बताते थे कि गर्भ के बहुत बड़े प्रभाव रहते हैं और उन्होंने एक परिवार की घटना भी सुनाई थी।

एक सेठजी उनके चार बेटे थे और उन चार बेटों में वे एक बेटे के लिए कहते थे कि यह मेरा बेटा है। सेठानी को यह बहुत बुरा लगता था कि सेठजी ऐसा क्यों कहते हैं कि मेरा एक ही बेटा है, बल्कि तीन बेटे नहीं। हाथ की पाँच उगंलियाँ चाहे छोटी–बड़ी हों, लेकिन एक ही हाथ की होती हैं, उनका समान अधिकार होता है। इसी प्रकार माता–पिता का अधिकार भी समान रूप से सभी बच्चों पर होता है।

सेठानी ने सेठजी से पूछा कि इसमें क्या रहस्य है ? सेठजी ने कहा- यदि रहस्य ही पूछती हो तो ठीक है। मैं इसका रहस्य बतलाऊँगा, लेकिन एक शर्त है। पहले आज तुम्हें एक बहाना बनाना पड़ेगा कि जिस समय तुम्हारे बेटे घर आयें, तुम चीखना-चिल्लाना और अपनी व्यथा को/दर्द को उनके सम्मुख बतलाना/प्रकट करना।

सेठानी ने कहा- ठीक ! यह कला तो हमारे पास है। बहुत आसान कला होती है महिलाओं को बहाना बनाने की, दुख-दर्द की और ऐसी कला को सिखाया नहीं जाता। सेठानी भी बहुत कुशल थी। दोपहर में भोजन के पश्चात् सेठजी बगल के कमरे में छिपकर बैठ गये, बाहर सेठानी बैठ गयी जिसमें भी रोती हुई, चेहरा बिगड़ा हुआ है, बाल फैले, कपड़े भी अस्त-व्यस्त हैं।

ऐसी स्थिति में बड़े बेटे ने आकर पूछा- माँ ! क्या हो गया ? सेठानी ने कहा- बेटा (रोते हुए) तुम्हारे पिताजी ने बहुत बुरी तरह से मारा है, हाथ-पैर टूट गये। बेटे ने कहा- अच्छा ! पिताजी ने आपको मारा है, सताया है। कहाँ गया वह ? मुझे बतलाओ, मैं अभी जाकर उसके टुकड़े-टुकड़े कर दूँगा।

माँ बोली, बाजार की ओर निकल गये और बेटा बाजार में खोजने निकल गया। तभी दूसरा बेटा आया। उसके सामने भी माँ ने अपनी सारी बात रखी। बेटा ! तेरे पिताजी ने मुझे बहुत मारा, पीटा। सूज गई, बहुत बुरी तरह से मारा है, उठते नहीं बन रहा। गुस्से में वह भी बोला- कहाँ है वह पिता ? बतला, मैं अभी जाता हूँ और उसे पत्थर से पटक-पटक कर पछाड़ दूँगा। माँ ने उसके लिये भी कहा, पिताजी बाजार की ओर गये हैं और दूसरा बेटा भी पिताजी को खोजने के लिये बाहर निकल गया।

तभी तीसरा बेटा आया, उसके सम्मुख भी माँ ने वही बात कही- तेरे पिताजी ने मुझे बहुत बुरी तरह से मारा, मेरे सारे दाँत टूट गये, भोजन करते नहीं आता, बोलते नहीं आता, ऐसी मेरी हालत हो गई। यह जीवन लगता है कि कुछ क्षणों का रह गया। तीसरे बेटे ने कहा- माँ ! पिताजी ने ऐसा मारा।

कहाँ है वह पिता ? बताओ, उसकी सारी चमड़ी खींच लूँगा। माँ ने कहा- बेटा, पिताजी बाजार गये हैं, देखो पकड़ो।

चौथा बेटा आया, उसके सामने भी माँ गिड़गिड़ायी और बोली- बेटा ! तुम्हारे पिताजी ने ऐसा मारा, अब तो मेरी जिन्दगी बेकाम हो गई, दोनों हाथ-पैर टूट गये। अब चलना भी नहीं होगा, खाना-पीना भी नहीं होगा, अब तो मेरी जिन्दगी थोड़े ही समय में पूरी हो जायेगी।

माँ की बात सुनकर चौथा बेटा बोला- माँ ! पिताजी ने मारा, ऐसा नहीं हो सकता। हमारे पिताजी बहुत अच्छे हैं। नहीं, बेटा पिताजी ने ही मारा। माँ कुछ आपसे बिगड़ गया होगा। जब किसी से कुछ बिगड़ जाता तो उसके समझाने के तरीके होते हैं। कोई व्यक्ति जब बातों से नहीं समझे तो उसे लातों से समझाया जाता है। पिता तो लात आपको मार नहीं सकते हैं। डाँट करके समझा सकते हैं और हो सकता है कि आवेग में, रोष में पिताजी का हाथ उठ गया हो, थोड़ा-सा लग गया हो।

हमारे पिताजी बहुत करुणाशील हैं, भले ही वे बाहर चले गये हों, लेकिन निश्चित ही वे बाहर जाकर भी दुःखी हो रहे होंगे, पश्चाताप के आँसू बहा रहे होंगे। निश्चित ही वे लौट करके आएँगे, अगर उन्होंने आपके हाथ-पैर तोड़े हैं, जुड़वाना भी तो उन्हें ही पड़ेगा। आप घबराये ना, निश्चित ही पिताजी को आपके दुःख से भी अधिक दुःख होगा। पिताजी अवश्य ही आपकी वेदना से द्रवित हो जायेंगे और आकर सारे कष्टों की क्षमायाचना कर लेंगे, क्योंकि वे हमारे पिताजी हैं। ऐसी-ऐसी बातें उस छोटे लड़के ने कहीं कि बंधुओ ! माँ भी पिघल गई, और बनावटी अवस्था दूर हो गई, फिर उसने उसे अपने हृदय से लगा लिया। बेटे ने पूछा- माँ ! पिताजी कहाँ हैं ?

मुझे बतलाओ, मैं उन्हें मनाकर लाऊँगा। आज उन्होंने खाना नहीं खाया होगा, उन्हें नींद भी नहीं आयेगी। मैं अभी जाता हूँ, समझा करके लाता हूँ। न जाने कहाँ बैठे होंगे, आँसू बहा रहे होंगे, दुखी हो रहे होंगे। आप बतलाओ, वे कहाँ गये ? बंधुओ ! माँ ने कहा- वे बाजार निकल गये।

वह बेटा भी माँ के कहे अनुसार बाजार की ओर चला गया। तभी सेठानी, सेठजी के पास पहुँचती है। और सेठजी पूछते हैं कि आपने बेटों को समझ लिया, पहचान लिया। सेठानी कहती– हाँ सेठजी ! मैंने समझ लिया। मैं नहीं जानती थी कि मेरे चार बेटों में से चार प्रकार के संस्कार इस प्रकार से होंगे। एक ही माँ के चार बेटे एक जैसे नहीं होते, चार के संस्कार चार प्रकार के होते हैं। पूर्वकृत अपना-अपना कर्म भी होता है और दूसरा, माँ के संस्कार भी होते हैं। सेठ-सेठानी इन सारे रहस्यों को समझने के लिए पास ही विराजमान किसी दिगम्बर निर्ग्रन्थ मुनिराज के पास पहुँचते हैं। महाराज अवधिज्ञानी थे, जिससे उनके ज्ञान की प्रसिद्धि थी। सेठ-सेठानी ने अपने बेटों की सारी बात महाराज के सम्मुख रखी और पूछा कि चार बेटों में चार प्रकार का अंतर क्यों ?

महाराज ने कहा– देखो, यह पहली संतान, जिसने यह कहा था कि मैं उसके टुकड़े-टुकड़े कर दूँगा, जिस समय आप रजोधर्म में थे और वह संतान अवतरण लेने वाली थी, उस समय आपकी दृष्टि किसी खटीक पर पड़ी, कसाई पर पड़ी और निरन्तर आप उसको देखते रहे कि किस तरह से वह मांस के टुकड़े-टुकड़े करता है। ठीक वही संस्कार गर्भस्थ शिशु पर पड़े और ऐसे संस्कार पड़े कि उसका ही प्रभाव आज बोल रहा है कि मैं पिता के टुकड़े-टुकड़े कर दूँगा।

दूसरी संतान जिस समय गर्भ में आई थी, उस समय आपकी दृष्टि पड़ोस में रहने वाले धोबी पर पड़ी थी, जो कपड़ों को पत्थर पर पछाड़-पछाड़ के साफ करता था। वही संस्कार इस बच्चे पर पड़े, इसलिए उसने कहा– मैं पिताजी को पत्थर से पछाड़ दूँगा।

तीसरा बेटा जिस समय गर्भ में आया था, उस समय आपकी दृष्टि, आपका विचार, एक चमार पर गया और आप उसको देखते रहे कि वह किस तरह से जानवरों-पशुओं की चमड़ी खींचता है, वही संस्कार बेटे पर पड़े, जिसके प्रभाव से उसके मुख से यह शब्द निकले कि मैं पिताजी की चमड़ी

खींच लूँगा। अंत में चौथी संतान, जिस समय गर्भ में आई थी, उस समय सेठानी को निर्ग्रन्थ संत के दर्शन हुए थे और दर्शन ही नहीं, प्रवचन भी मिला था। इतना बड़ा सौभाग्य कि बंधुओ ! धर्म से भरे हुए, आत्मा के चिंतवन से भरे हुए, परमात्मा का ध्यान करने वाले योगियों के चिंतवन का, प्रवचन का प्रभाव उनके सम्मुख आये हुए व्यक्ति पर छोड़ता है।

आप उस समय मुनिराज के परिवेश में थीं, इसलिए संस्कार जो पड़े, वे अत्यन्त धार्मिक रहे और उसके अंदर में नकारात्मक नहीं, सकारात्मक विचार हुए, क्योंकि नकारात्मक विचारों में विसंवाद होता है और जहाँ सकारात्मक चिंतवन प्रारम्भ हो जाता है, वहाँ वह सुई और धागा बन जाता है। सकारात्मक विचारधारा वाला व्यक्ति ही टूटे को जोड़ता है, एक कर देता है, सारी उदासीनता को हर्ष से भर देता है। कर्लव्य, विनय, मर्यादा, प्रेम और वात्सल्य से सारे वातावरण को धार्मिकता, नैतिकता में परिवर्तित कर देता है।

बंधुओ ! माँ के गर्भ में रहने वाले शिशु पर माँ के संस्कार के विषय में आचार्यश्री ने एक बात और कही थी कि जिस अवसर पर एक माँ अपने बच्चे के लिए महाराज के पास लाई थी कि जिसके शरीर का विकास व्यवस्थित नहीं था, जिसके शरीर के अवयव माप के अनुसार नहीं थे, सिर बड़ा था और शेष शरीर छोटा था। माँ दुःखी थी कि मेरा बेटा ऐसा क्यों हुआ महाराज ?

महाराज ने कहा– माँ ने अपना संतुलन नहीं रखा, मर्यादा नहीं रखी और उसका परिणाम गर्भस्थ शिशु पर पड़ा। ग्रहण आदि के समय में यदि माँ कहीं बाहर निकल जाए, खाना-पीना व्यवस्थित न हो, रहन-सहन की प्रक्रिया ठीक न हो तो उसका प्रभाव गर्भस्थ शिशु पर पड़ता है। इसलिए बंधुओ ! वह समय बहुत सावधानी से व्यतीत करना पड़ता है।

इसलिए मैं कहता हूँ, उस समय माँ की एक बहुत बड़ी तपस्या होती है, वह बहुत सारी बातों को ध्यान में रखती है, तब कहीं एक सुयोग्य पुत्र को जन्म दे पाती है। सुयोग्य पुत्र की भावना रखना एक अलग बात है, प्रार्थना करना अलग बात है, लेकिन बंधुओ ! सुयोग्य पुत्र को पाना बहुत कठिन है, कठिन ही

क्या, दुर्लभ है। सुयोग्य पुत्र ऐसी ही साधक महिलाओं के यहाँ उत्पन्न होता है, जो इस प्रकार की मर्यादाओं का पूरा ध्यान रखती हैं।

मेवाड़ में एक कहावत है–

जननी जने सो ऐसा जन, कै दाता कै सूर।
नहीं तो रहिये बांझड़ी, मत गँवाने नूर।।

कहा जाता है कि माँ, जन्म ही देना है तो ऐसे बच्चे को जन्म दे, जो या तो दाता हो या शूरवीर हो। कृपण और कायर न हो, क्योंकि कृपण व्यक्ति न तो स्वयं खा पाता है और न दूसरों को खिला पाता है।

कृपण व्यक्ति संग्रह करना/एकत्रित करना तो जानता है, पर खाता और खिलाता नहीं है। वह यूँ ही एकत्रित कर-करके ही खत्म हो जाता है, अपनी जीवन लीला को समाप्त कर देता है। बुन्देलखण्ड में ऐसे व्यक्ति के लिये कहा गया कि वह खेत का बिजूका है। न खाने का और न खाने देल का। खेत में जब कहीं अपन देखते हैं कि किसान एक लकड़ी लगा देता है और उसको बाँधकर उसमें शर्ट पहना देता और उसके ऊपर एक उल्टा घड़ा रख देता, नीचे से पजामा, पेंट पहना देता, जिससे देखने वालों को लगता है कि शायद कोई व्यक्ति खड़ा है।

कोई मनुष्य या कोई खेत का माली है– ऐसा सोचकर पशु-पक्षी उस खेत में नहीं आते। कृपण व्यक्ति ऐसे ही होते हैं। इसलिये कहते हैं कि कृपण व्यक्ति को जन्म देना सार्थक नहीं। जन्म देना है तो दाता को जन्म दे। ऐसे पुत्र को जन्म दे कि सत्कार्यों में, दूसरों की सेवा में, गरीबों की सेवा में, असहाय व्यक्तियों की सेवा में, दीन-दुःखियों की सेवा में और तीर्थक्षेत्र के जीर्णोद्धार में अपने धन का सदुपयोग करे, दान देना सीखे।

'कै दाता कै सूर' अथवा ऐसे पुत्र को जन्म दे जो शूरवीर हो। खाली लड़ने मात्र में शूरवीर न हो, क्योंकि लड़ने के लिये शूरवीर का धार्मिकता में कोई महत्त्व नहीं है। नैतिकता में कोई स्थान नहीं है।

जो स्वयं अपनी आत्मरक्षा करे और अपने देश, राष्ट्र, न्याय-नीति और धर्म की रक्षा करे। वह व्यक्ति शूरवीर कहलाता है। यदि जनना है तो ऐसे व्यक्ति को जन्म दो, अन्यथा 'रहिये बांझड़ी', अन्यथा बांझ रहिये यानि पुत्र को जन्म देना आवश्यक नहीं है।

यानि पुत्र जन्म देना तो ऐसा देना, जो अपने देश, राष्ट्र और धर्म के तथा आत्महित के, आत्मकल्याण के पथ का प्रदीप बन जाये, जहाज बन जाये, स्वयं भी तरे तथा दूसरों को तारे। स्वयं भी प्रकाशित हो तथा दूसरों को भी प्रकाशित करे। एक ही सुयोग्य पुत्र है तो पर्याप्त है। बहुत सारे पुत्र जन्मे, पर वे सम्यक् प्रकार के न हो तो कहा गया शेरनी एक पुत्र को जन्म देती, सारा जीवन शांति से व्यतीत करती है, लेकिन गधी सैकड़ों पुत्रों को जन्म देती, स्वयं भी बोझ ढ़ोती और साथ में सभी पुत्रों को भी बोझ ढोना पड़ता है। इसलिए बच्चों को जन्म देना ही है तो एक सुयोग्य पुत्र को जन्म देना।

बंधुओ ! जन्म देने के पश्चात्, माँ का कर्तव्य होता है, जो धार्मिक संस्कार गर्भस्थ अवस्था में दिये हैं, वे जन्म के पश्चात् भी दें। धार्मिक संस्कार देने का तात्पर्य समाज में यह परम्परा आज भी प्रारम्भ है कि बच्चे का जन्म होते ही माँ प्रतिदिन उसके कान में णमोकार मंत्र सुनाती, लेकिन ध्यान रखना, वही माँ णमोकार मंत्र सुना सकती है, जिसे णमोकार मंत्र स्मरण हो। यदि माँ को ही स्मरण न हो तो वह बच्चे को भी क्या सुनायेगी। जब बच्चा 45 दिन का हो जाता है तो सारे परिवार के लोग धार्मिक उत्सव मनाते, हर्ष-खुशी मनाते हुये मंदिर लाते हैं और यदि वहाँ कोई गृहस्थाचार्य होते हैं अथवा कोई गुरुजन होते हैं तो उनके सम्मुख ले जाते। वे उसके सिर पर स्वस्तिक बनाते और बनाने के उपरांत आशीर्वाद देते, णमोकार मंत्र सुनाते और इसके साथ माता-पिता को नियम देते कि जब तक वह 8 वर्ष का ना हो जाए, तब तक आप इसे मद्य, मांस-मधु का सेवन मत कराना, 5 उदम्बर फल का सेवन नहीं कराना, इस प्रकार अष्ट मूलगुण संस्कार नियम/प्रतिज्ञायें 8 वर्ष तक माता-पिता की जिम्मेदारी से पालन उसके लिए कराने होते हैं, यह उनका बहुत बड़ा दायित्व होता है।

प्रतिदिन णमोकार मंत्र सुनाना, यथावसर गंधोदक देना, भगवान के दर्शन कराना भी माता-पिता का बच्चों के प्रति दायित्व है। जिस घर में इस प्रकार से संतान पालित होती है, नियम से वह धार्मिकता को ही जन्म देती है। धार्मिक संस्कार में पली हुई संतान, जिसने जन्म से ही णमोकार मंत्र समझ लिया है, वह बहुत भाग्यशाली संतान है, बहुत बड़ा पुण्यात्मा है, वह आगे भविष्य में अपना ही नहीं, ना जाने कितने प्राणियों का हित करेगा, कल्याण करेगा।

लेकिन आज का समय बिगड़ता जा रहा है, बच्चा यदि रोता तो बंधुओ ! माँ, टी.वी. के सामने बिठा देती है और छोटा-सा वह बच्चा, अभी से उसके लिए टी.वी. के संस्कार पड़ गये हैं, इसलिए देखा जाता है कि आज छोटे-छोटे बच्चों के लिए चश्मा चढ़ जाता है।

क्योंकि टी.वी. के प्रकाश की जो किरणें होती हैं, वह आँखों पर गलत प्रभाव डालती हैं। चूँकि आपने उसको टी.वी. के सामने लिटा दिया, हो सकता है वह खेलता रहेगा, लेकिन संस्कार अच्छे नहीं पड़ेंगे। हमारी प्राचीन संस्कृति भजन सुनाने की थी। माँ लोरियाँ सुनाती थी और सुना-सुना कर सुलाती ही नहीं अपितु जगाती थी।

क्योंकि-

प्रातः सायं नभ में देखो, कैसी दिखती लाली है।
एक सुलाती एक जगाती, इतने अंतर वाली है॥

एक माँ बच्चे के लिए सुलाती है और एक माँ बच्चे के लिए जगाती है।

कुंदकुंदाचार्य एक ऐसे महान् आचार्य हुए, जिन्होंने समयसार, प्रवचनसार, नियमसार जैसे बहुत बड़े-बड़े शास्त्र लिखे। उनके विषय में कहा जाता है कि जब उनका जन्म हुआ तो उनकी माँ मदालसा और उनके बड़े छह भाई हुए, वह प्रत्येक के लिए लोरियाँ सुनाती थीं-

सिद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरंजनोऽसि।
संसारमाया परिवर्जितोऽसि॥

इस प्रकार वह भजन, स्तुति, स्तोत्र, कहानी को सुनाकर बच्चों को संस्कार देती क्योंकि इसके माध्यम से बच्चों को बहुत जल्दी याद हो जाता है। याद रखना, बच्चों की मैमोरी इतनी अच्छी होती है, उनका केचिंग पॉवर इतना अच्छा होता है कि वे बहुत सारी बातें बहुत जल्दी पकड़ लेते हैं, सारी बात उन्हें याद हो जाती है।

कुंदकुंदाचार्य जब लगभग पाँच वर्ष के हुए होंगे तो उन्हें सारी बातें याद थीं, सिद्धोऽसि.... एक दिन वे अपनी माँ के पास बैठे और बोले- माँ ! मुझे यह बतलाओ कि आत्मा क्या है ? बेटा ! महापुरुष निर्ग्रन्थ दीक्षा लेते हैं, मुनि बन जाते, संसार की माया का त्याग कर देते, अंदर से भी बाहर से भी तो फिर वे मुनि त्याग-तपस्या के द्वारा पूर्ण कर्मों को क्षय कर निर्वाण को प्राप्त कर लेते हैं, वे सिद्ध हो जाते, इसलिए तू भी शक्ति रूप से सिद्ध है। तू भी एक केवलज्ञान सम्पन्न आत्मा है। अपने अंदर भी केवलज्ञान की शक्ति है। माँ ! मैं भी सिद्ध होने वाला हूँ, ऐसी मेरे अंदर भी शक्ति है माँ ! हाँ बेटा ! तुम्हारे अंदर भी शक्ति है, भगवान बनने की।

बंधुओ ! माँ इस प्रकार की बातें सुनकर विचार में डूब गयी कि क्या छोटा-सा, नन्हा-सा बालक नौ वर्ष की अवस्था में दीक्षा ले सकता है और ऐसा महान धुरन्धर विद्वान हो सकता है, जिन्होंने 84 पाहुड़ के 84 शास्त्र लिखे हो। विदेह क्षेत्र में जाकर तपस्या की हो। ध्यान दीजिए, कभी भी बच्चों के लिए संस्कार दें तो धर्म के संस्कार दें, उनकी अंगुली पकड़ कर मंदिर लायें, क्योंकि माँ के द्वारा दिये गये संस्कार उसके अंतिम समय तक रहते हैं, धर्म के संस्कार उसके जीवन को बनाते हैं, उसके जीवन में शान्ति, आनन्द लाते हैं।

जिस माँ ने अपने बच्चों के लिए मंदिर जाना, सिखा दिया या मंदिर लाई है। बंधुओ ! आपका वह बच्चा आपको शिखरजी तक ले जायेगा, आपने उसे णमोकार मंत्र सुनाया तो वह आपको शास्त्र सुनायेगा। यदि आपने बच्चों को महाराज का पड़गाहन सिखाया, दूसरे दिन बच्चा स्वयं चौका लगायेगा और

आपसे प्रार्थना करेगा– माँ ! चलिए चौका लगा है, हम सभी आहार देंगे। लेकिन जिसने धर्म के संस्कार नहीं दिये तो जब आप वृद्ध हो जायेंगे। फिर आप कहते रहेंगे, बेटा दर्शन करा दो। बेटा कहेगा, समय नहीं। आप कहेंगे तीर्थयात्रा करना है तो वह कहेगा, नहीं–नहीं करना, घर में बैठो, क्योंकि आपने धर्म के संस्कार नहीं दिये।

इसलिए धर्म के संस्कार दीजिए, बच्चा मंदिर आता है जरूर लाइये। आपकी सारी प्रतिक्रियाओं का प्रभाव बच्चों पर पड़ता है। बच्चे जब अपनी माँ के साथ आते, माँ हाथ जोड़ती तो बच्चा भी माँ की ओर मुँह करके हाथ जोड़ कर खड़ा हो जाता। माँ महाराज के दर्शन करती, नमस्कार करती, पर बच्चा माँ के लिए नमस्कार करता है और अंत में माँ को घुमाना पड़ता है उसे, यहाँ नहीं, वहाँ करो। माँ माला उठाकर फेरती तो बच्चा भी माला उठाता, मालूम नहीं कैसे करना, वह उल्टा–सीधा घुमाता, फिर देखा कि माला माँ की पूरी हो गई तो वह भी रख देता।

माला फेरने के संस्कार माँ से आये। माँ ध्यान करती, बच्चा भी वैसे ही बैठ जाता, माँ शास्त्र का स्वाध्याय करती, पूजा करती, पुस्तक खोलती तो वह भी शास्त्र खोलता। भले ही उसको पढ़ना नहीं आता, फिर भी पढ़ने का प्रयत्न करता। माँ द्रव्य चढ़ाती तो वह भी हाथ करता कि हमें भी दो, एक–दो बार चढ़ाया और कहेगा और दो, चढ़ाने के संस्कार बच्चों के अन्दर आ रहे हैं।

कभी ये संस्कार इतने विकसित हो जाते हैं कि आलसी माता–पिता के आलस को भी दूर कर देते हैं। ऐसे बच्चों की कहानी सुनने में आती कि माँ कहती– महाराज श्री ! आज स्वास्थ्य ठीक नहीं दिखा, हम आना नहीं चाहते थे, लेकिन बच्चा मचल गया, रोने लगा और जबर्दस्ती मंदिर लाने के लिए उसने मुझे प्रेरित किया है। इसलिए मैं आई आपके दर्शन करने। क्या हुआ, उस बच्चे ने आपके लिए सम्भाल लिया, प्रेरित किया।

बंधुओ ! बच्चा मंदिर जाता है तो वह पूछता है– माँ यह कौन है ? आप उसको जरूर उत्तर दीजिए। बेटा ! ये भगवान हैं। उसको याद हो जाएगा, वह

कहता है– भगवान हैं, हाँ भगवान हैं। माँ ! ये बोलते क्यों नहीं ? बेटा ज्यादा बोलने से व्यक्ति की इज्जत नहीं होती, झूठ बोलना पड़ता है, इसलिए भगवान मौन रहते हैं। अच्छा, हम भी अब झूठ नहीं बोलेंगे। माँ ! भगवान देखते क्यों नहीं ? बेटा ! बाहर के देखने से, अपनी आत्मा नहीं दिखती, इसलिए भगवान ने देखना बंद कर दिया। माँ ! मैं भी ऐसा ही बैठूँगा। मुझे भी भगवान दिखेंगे क्या, हाँ, तुम्हें भी भगवान दिखेंगे।

ऐसे वह प्रश्न करता और माँ उसके हिसाब से उत्तर देती है। उसके हिसाब से समझाती है तो धीरे–धीरे बच्चा संस्कारवान बन जाता है। अब आप देखिये, जिस बच्चे ने आपको स्तुति बोलते देखा है तो वह भी अपनी तोतली आवाज में बोलता है, इस प्रकार से संस्कार बच्चों में पड़ते हैं। और जब माँ भूल जायेगी तो बच्चा ही याद दिलाता है, इसलिये बच्चों को धार्मिक संस्कार देना माँ का प्रधान कर्तव्य है। जिस माँ ने अपने बच्चे को ऐसे संस्कार दिये तो वह संतान महान बन जाती है और एक बहुत बड़े प्रदीप का स्थान धारण कर लेती है। पुत्र कुलदीपक बन जाता है। और सारे परिवार के लिए प्रकाशवान् कर देता है। कहते हैं–

Like Father like son, Like mother Like Doughter.

जैसे पिता, वैसे ही उनके पुत्र होते हैं। जैसी माँ, वैसी पुत्री होती है। माँ यदि धार्मिक न हो तो बेटी उसकी धार्मिक नहीं हो सकती।

एक बार क्या हुआ कि एक ऐसी माँ थी जो धार्मिक नहीं थी। माँ ने अपने बच्चे को बड़ी गरीबी से पाला, लेकिन उसको धार्मिक संस्कार नहीं दिये। प्रारम्भ में बच्चे ने स्कूल से एक पेन चोरी किया और माँ से कहा– माँ ! मैं किसी बच्चे के बेग से पेन चोरी करके लाया। माँ ने कहा– तूने बहुत अच्छा किया।

दूसरे दिन बच्चा स्कूल से एक पुस्तक चोरी करके लाया। माँ ने उसकी पीठ ठोकी बहुत अच्छा किया। तीसरे दिन मुहल्ले में किसी का लोटा उठाकर लाया, टाट उठाकर लाया, माँ ने कहा बहुत अच्छा किया। धीरे–धीरे वह

बच्चा चोर ही नहीं, महान डाकू बन गया और अंत में प्रसिद्ध इनामी डाकू हो गया और उसको पकड़ने का इनाम रखा गया और अंत में जाकर वह पकड़ा गया और राजा ने उसे सूली पर लटकाने की सजा दी। सूली के तख्ते पर उसे खड़ा किया गया और उससे पूछा गया कि आपकी कोई आखिरी इच्छा है क्या ? उस डाकू ने कहा- हाँ, मेरी एक इच्छा है। मैं अपनी माँ से मिलना चाहता हूँ।

माँ को बुलाया गया और कहा- आप माँ से मिल लीजिये। क्या कहना चाहते हो ? वह बोला- मैं माँ से कान में कुछ कहना चाहता हूँ। माँ को उसके कान के पास में खड़ा कर दिया गया। वह माँ के कान के पास अपना मुख ले गया और माँ भी अपना उसके कान के पास कर देती है। वह डाकू कुछ सुनाता नहीं है, अपितु कान को अपने दाँतों से काट देता है। माँ चीख पड़ती है।

तब उससे पूछा जाता है- मृत्यु के फंदे पर तू चढ़ा हुआ है और अभी भी इतनी हिंसक भावनायें हैं कि माँ के कान को काट दिया। उस डाकू ने उत्तर दिया- श्रीमान् जी ! मैं माँ के कान को काटकर नहीं जा रहा हूँ, किन्तु बहुत सारी माताओं के लिए सबक सिखाकर जा रहा हूँ। पूछा गया- कौन-सा सबक ?

सबक यह है कि यह मेरी माँ है। जब मैं एक दिन पेन्सिल चुरा कर लाया था, तो माँ ने रोका नहीं था बल्कि मेरी प्रशंसा की थी। दूसरे दिन मैंने पुस्तक चुराई थी, माँ ने मेरी पीठ पर हाथ रखा और मुझे शाबासी दी। फिर मैंने धीरे-धीरे एक दिन बर्तन चुराये और एक दिन इस प्रकार का डाकू बनने के पश्चात् आज मुझे फाँसी के फंदे पर लटकना पड़ रहा है। यदि माँ उसी समय मेरी उंगली पकड़ लेती और एक चाँटा लगा देती तो शायद आज मुझे फाँसी के फंदे पर नहीं चढ़ना पड़ता।

बंधुओ ! माँ अपनी संतान को बना भी सकती है, बिगाड़ भी सकती है। इसलिये कहा भी गया है-

"A Good Mother is better than Hundred Teachers."

सौ अध्यापकों की अपेक्षा एक अच्छी माँ सर्वश्रेष्ठ है और वही माँ असली अध्यापक है, जो अपने बच्चे को सुसंस्कार देती है। इसलिये आज मैं इतना ही कहूँगा कि अपनी संतान को जन्म देना ही माँ का कर्तव्य नहीं, किन्तु उसे सुयोग्य बनाना प्रदान कर्तव्य है।

इसलिये माँ अपने पुत्र को ऐसा पुत्र बनाये जो सुपुत्र हो। क्योंकि यदि वह सुपुत्र हो गया तो आपके जीवन के लिये लाठी बनेगा और अंतिम वृद्ध-अवस्था में लाठी बनकर आपकी तीर्थयात्रा पूरी करायेगा। और यदि संस्कार नहीं मिले तो वह भी दूसरी लाठी बन जायेगा, और मार-मार कर आपकी जीवनलीला समाप्त कर देगा, इसलिये माँ सुयोग्य पुत्रों को जन्म दे।

जय बोलिये, 1008 महावीर भगवान की.... !

***

मानुष्यं वरवंश जन्म विभवो दीर्घायुशरोग्यता।
सन्मित्रं सुसुतं सतीप्रियतमा भक्तिश्च तीर्थंकरे॥
विद्वत्तं सुजनत्वमिनिन्द्रयजयः सत्पात्रदानेरति।
एते पुण्य विना त्रयोदशगुणाः संसारिणां दुर्लभाः॥

अर्थ- संसार में 13 बातों का मिलन अति दुर्लभ है (1) मनुष्यपर्याय (2) उच्चवंश (3) ऐश्वर्य (4) दीर्घायु (5) निरोग शरीर (6) सन्मित्र (7) सुयोग्यपुत्र (8) पतिव्रता पत्नी (9) तीर्थंकरों में भक्ति (10) विद्वता (11) सज्जनता (12) जितेन्द्रियता और (13) सत्पात्रदान।

ये सातिशय पुण्यानुबन्धी पुण्य अर्जन करने वाले को ही प्राप्त होती है। पुण्यहीन को कदापि नहीं मिल सकती।

4. कुलदीपक का प्रकाश

आज तक हमने यह शिक्षा तो प्राप्त की है कि माँ और पिता को ऐसा होना चाहिए, लेकिन पुत्र को कैसा होना चाहिए, यह नहीं सीखा। परिणाम यह निकला कि अपने सारे दोषों को बच्चों ने माता-पिता के सिर पर रख दिया। ऐसे बच्चों का भविष्य न कभी बन पाया है और न कभी बन पायेगा।

बंधुओ ! आज तक हमने यह शिक्षा तो प्राप्त की कि माँ और पिता को ऐसा होना चाहिए, लेकिन पुत्र को कैसा होना चाहिए- यह नहीं सीखा और परिणाम यह निकला कि अपने सारे दोषों को बच्चों ने माता-पिता के सिर पर रख दिया, ऐसा बच्चों का भविष्य न कभी बन पाया है और न कभी बन पायेगा।

बंधुओ ! अभी तक अपन देख चुके हैं कि श्रावकों की गृहस्थिक (गृहस्थतल) नाम की जो क्रिया है, परम स्थान है। उसके माध्यम से माँ कैसी होनी चाहिए और माँ के कर्तव्य क्या होने चाहिए। यदि माँ अपने कर्तव्य का पालन करती है, तो संतान भी कर्तव्य परायण होती है। आज हमें यह देखना है कि माँ के लिये कर्तव्य जितना आवश्यक है, माँ का कर्तव्य के विषय में जितना स्थान है, पिता भी उससे पीछे नहीं। पिता का भी अपना यथाविधि स्थान है, उनकी भी योग्यता है, उनका भी बहुत बड़ा अधिकार है।

पिता भी संतान को योग्य बनाने का प्रयत्न और प्रयास करते हैं। पिता का निरन्तर ये चिंतन रहता है कि हमारी संतान कैसे योग्य बने और इसके लिये निरन्तर वे अपने चिंतन में निमग्न रहते हैं। जब बालक का शैशव काल होता है, पिता अपनी संतान को गोद में लेता है और उनकी निगाह अपने बच्चे पर पड़ती है। एक मात्र इसी प्रकार निगाह पड़ती है कि आगे जाकर हमारी सारी गृहस्थी की जिम्मेदारी को सँभालेगा, संचालक बनेगा, सारी गृहस्थी को

सम्भालने का एक तरीका निकालेगा और गृहस्थी को ही नहीं, वह सारी समाज, राज्य, नगर, देश को भी सम्भालने की योग्यता रखेगा।

एक पिता के ये स्वप्न हैं, अवधारणा है, इस प्रकार से अपनी कल्पना करते हैं, ऐसे विचारों में डूबते हैं और जिस पिता ने प्रारम्भ से ही यह सारा विचार, निर्णय बना लिया है। निश्चित है, वह पिता संस्कार के ऐसे साँचे को जन्म देते हैं, जिसमें वह बालक ढलता है और निरंतर बढ़कर वह अंत में उस आकार को धारण कर लेता है।

सुयोग्य शिक्षा देने का अधिकार पिता का रहता है कि किस तरह से हम अपने बच्चे के लिए शिक्षा प्रदान करें, सुयोग्य बनायें, और निरंतर इसके विषय में रास्ते निकालता है। कौन-से स्कूल, आश्रम, विद्यालय में बच्चे को भेजा जाये, कौन-से गुरु के सम्मुख भेजा जाये, जिससे हमारा बच्चा संस्कारवान् बने। मात्र शिक्षा ही प्रधान नहीं, इसके साथ-साथ नैतिकता तथा जीवन उत्कर्ष के संस्कारों की कल्पना पिता के मन में होती है।

बंधुओ ! संतान तो गीली मिट्टी है। अभी उसके लिए कुछ भी पता नहीं कि मुझे किस संस्कार में ढलना चाहिए, कैसे साँचे में ढलना चाहिए। यह सब उसके माता-पिता पर निर्भर है कि हम अपनी संतान को कैसे संस्कारों में ढालें। एक वे माता-पिता होते हैं, जो अपनी संतान के लिए विभिन्न प्रकार की शिक्षा, विद्या को प्रदान करके सुयोग्य बना देते हैं, लेकिन कुछ ऐसे भी माता-पिता होते हैं, जो अपनी संतान को सुशिक्षित नहीं बना पाते और उनका सारा जीवन शिक्षाविहीन हो जाता है।

हितोपदेश मित्र लाभ के अंदर एक सुभाषित कहा गया कि वह पिता पिता नहीं, माता माता नहीं; जिस माता-पिता ने अपने बच्चे के लिए सुसंस्कार नहीं दिये, शिक्षायें नहीं दीं। वहाँ लिखते हैं-

माता शत्रुः पिता बैरी, येन बालो न पाठितः।
न शोभते सभामध्ये, हंसमध्ये बको यथा।।

वह माँ, माँ नहीं, जिस माँ ने बच्चे के लिए जन्म तो दिया, पर संस्कार नहीं दिये, शिक्षा नहीं दी, वह माता शत्रु है। किसी न किसी भव की शत्रुता का निर्वाह करने के लिए इस पर्याय में उसने अपने पुत्र के लिए संस्कार नहीं दिये, अपनी शत्रुता निकालने के लिए उसने यह अवसर निकाला है, इसलिए कहा गया है– वह भी शत्रु है, क्योंकि आपने प्रारम्भ में संस्कार नहीं दिये और उसका परिणाम यह निकला कि सारा का सारा जीवन उस बच्चे का शिक्षाविहीन रहा और ऐसे बालक का सारा जीवन बेकार हो जाता है। कल्पना कीजिए, जिस बालक को पिता से शिक्षा न मिली हो तो वह पिता भी पिता नहीं, बहुत बड़ा बैरी है, किसी न किसी पर्याय का बैर भँजाने के लिए वह पिता बना है। यदि उस बालक के लिए शिक्षा दी जाती, ज्ञान (विद्या) दिया जाता तो शायद उसका जीवन बदल जाता चूँकि आज समय बदल गया।

क्योंकि जो आज व्यक्ति शिक्षा के अभाव में मजदूरी कर करके 50-100 रुपये दिन के भरोसे बैठता है और महीने भर में 2000-3000 रुपये कमाता है, वही बालक यदि शिक्षित होता तो शायद वह 20000-25000 रुपये तक मासिक वेतन पा सकता था। कहाँ 3000 और कहाँ 25000 ? कितना बड़ा अंतर है। आज अनपढ़ होने के कारण वह दूसरों से ठगा जाता।

पढ़ा-लिखा होता तो शायद आज उसके ऊपर ये समस्यायें नहीं आतीं, क्योंकि बतलाया जाता है कि प्रायः अनपढ़ लोग तो अपनी अज्ञानता से परेशान होते हैं और दूसरी परेशानी उन्हें शिक्षित लोगों से होती है। जो मजदूर पढ़े-लिखे नहीं होते हैं, मात्र अँगूठा लगाना जानते हैं, उन्हें पता नहीं रहता कि उन्हें कितना पैसा दिया जा रहा है और मैं कितने रुपया का अँगूठा लगा रहा हूँ। शायद वे 5000 रुपये के वेतन का अँगूठा लगाते और उनको दिये जाते 3000 रुपये।

सम्भवतः यह उनके साथ बहुत बड़ा धोखा हुआ और इसका मुख्य कारण उनकी अज्ञानता रही है। आज आप देखते हैं कि विभिन्न प्रकार के अतिक्रमण,प्रायः निरन्तर बढ़ते जा रहे हैं और शनैः-शनैः ऐसे भी लोग होते

हैं, जो एक-दूसरे की संपदा-सम्पत्ति के लिए आक्रमण करते तथा अपना हाथ उस पर जमा लेते, धोखे से बात कर स्टाम्प लिखवा लेते, दूसरे लोगों से स्टाम्प पर हस्ताक्षर करवा लेते तथा अंत में कान पकड़ कर बाहर निकाल दिये जाते।

और जब कानून या जज के सम्मुख वह लिखा हुआ कागज पहुँचता है तो बंधुओ ! उस अनपढ़ व्यक्ति की आँखों में आँसू बहाने के अलावा कोई रास्ता नहीं होता, कोई तरकीब/उपाय नहीं होता और देखते-देखते उसकी आँखों के सामने उसकी सम्पदा जाती हुई दिखती है और उसका सारा का सारा दोष माता-पिता के लिये कहा जाता है, इसलिये सुयोग्य माता-पिता बच्चों को जन्म देना ही पर्याप्त नहीं मानते, बल्कि जन्म देने के साथ, वे उसकी शिक्षा के विषय में सोचते हैं, प्रयास करते और ऐसे भी इस धरा पर माता-पिता हुए, जिन्होंने मजदूरी कर-करके अपनी संतान का भरण-पोषण ही नहीं किया, उसे शिक्षित बी बनाया, और इतना शिक्षित बनाया कि जब कभी अमेरिका के राष्ट्रपति के विषय में देखते हैं तो देश के सबसे प्रमुख पद पर पहुँचा दिया, एक मात्र गरीब माता-पिता ने।

ऐसे महापुरुषों के जीवन चरित्र को जब हम खोल कर देखते हैं तो पाते हैं कि उनकी प्रारम्भिक जीवनी बहुत कष्टों के मध्य में व्यतीत हुई, लेकिन माता-पिता ने कभी अपनी हिम्मत नहीं हारी, निरन्तर पढ़ाते रहे तो कालांतर में उनका जीवन सुन्दर बन गया। इसलिये माता-पिता का सबसे बड़ा दायित्व है कि वह अपनी संतान को पढ़ायें। लेकिन ध्यान रखें, जितनी लौकिक पढ़ाई आवश्यक है तो पारमार्थिक, धार्मिक पढ़ाई भी उतनी आवश्यक है, क्योंकि मैंने कल-परसों इस बात के लिए बतलाया था कि यदि आपके पास लौकिक पढ़ाई भी है तो उस लौकिक पढ़ाई के बल से, सम्पदा-सम्पत्ति तो प्राप्त कर सकते हो, पर उससे शांति नहीं मिलेगी, धनसम्पदा प्राप्त हो सकती, पर धर्मसम्पदा प्राप्त नहीं होती और शांति, धर्म, नैतिकता, कर्तव्य परायणता, व्यवहारिकता से आती है और यह सारी की सारी शिक्षा मात्र धर्म देता है।

कधं चरे कदं चिट्ठे, कदमासे कदं सये।
कधं भुंजेज्ज भासिज्ज, एवं पावं ण बज्झदि॥1014॥ (मू.)

अर्थात् कैसे चलना चाहिए ? कैसे बैठना चाहिए ? कैसे खड़े होना चाहिए ? कैसे शयन करना चाहिए ? कैसे बोलना चाहिए ? कैसे भोजन करना चाहिए ? और कैसे पारिवारिक, सामाजिक लोगों के साथ व्यवहार करना चाहिए, यह सारी विद्या, कला एक मात्र धर्म देता है, जिससे मैं समझता हूँ कि व्यक्ति मानव ही नहीं, महामानव बनता है और वह महामानव से प्रभु परमात्मा का रूप धारण कर लेता है, जिसको ये सुन्दर सुसंस्कार दिये गये हैं। इसलिए मैं उन माता-पिता के लिए महान मानता हूँ, जो बच्चे के लिए सुसंस्कार ही नहीं, बच्चे के लिए बहुत बड़ी महानता की उपलब्धियाँ प्रदान करते हैं। संतान से भगवान बना देते हैं, क्योंकि उन्होंने छोटे बच्चे के लिए णमोकार मंत्र सुनाया है।

जो माँ अंगुली पकड़ करके उसे मंदिर ले गई, समझ लेना कि उस माँ ने बहुत अच्छे संस्कार दिये कि उसे धर्म के द्वार पर जाकर, शांति के द्वार पर ले जाकर रखा है। वह बालक भी आपके लिए गिरनारजी, शिखरजी की यात्रा करायेगा, क्योंकि आपने उसे धर्म के रथ पर लाने का प्रयत्न-प्रयास किया है। जिस बालक को आपने करुणा-प्रेम से धर्म के संस्कार दिये हैं, वह बालक आपकी व्यथाओं, परेशानियों, कष्टों को सुनकर दुःखी होगा तथा उन्हें दूर करने का प्रयत्न-प्रयास करेगा। यदि आपने बालक के लिए उपेक्षा सिखाई है तो वैसे ही उपेक्षा के संस्कार आपके प्रति बालक के होंगे।

जीवन कैसे जीना चाहिए और जीवन में कैसे धार्मिकता-नैतिकता आनी चाहिए ? यह सारी बातों की कला तथा विद्या, शिक्षा पिता सिखाता है, वह अपने बच्चे के लिए वीर-पराक्रमी बनाता है। हमेशा स्वतंत्र, आत्मनिर्भर बना देता है, ताकि साधना के पक्ष में आई हुई विपत्तियों से वह घबराये न/ चलायमान न हो, पीछे न हटे और इन सारे संस्कार देने का दायित्व एक मात्र पिता का होता है, और जो इस प्रकार के अपने कर्तव्य का ध्यान रखता है उसके लिए भी सुयोग्य संतान मिलती है।

दूसरा पक्ष हमको यह भी देखना है कि माता-पिता के प्रति पुत्र का भी कर्तव्य क्या होना चाहिए ? यह भी समझना हमको बहुत आवश्यक है, क्योंकि आज तक हमने यह शिक्षा तो प्राप्त की कि माँ और पिता को ऐसा होना चाहिए। और परिणाम यह निकला कि अपने सारे दोषों सारी गल्तियों के लिए प्रायः बच्चों ने अपने माता-पिता के ही सिर पर रख दिया कि माँ ने संस्कार नहीं दिये, इसलिये मैं ऐसा हूँ।

मेरे पिता ने शिक्षा नहीं दी, इसलिए मैं ऐसा हूँ। यानि स्वयं ने गलत कार्य किये और थोपा गया माता-पिता के ऊपर। यह बहुत बड़ी कमी, त्रुटि रही और ऐसे व्यक्तियों का जीवन आज तक न कभी बन पाया है और न भविष्य में बन पायेगा। वे व्यक्ति निकम्मे और स्वार्थी कहलाते हैं, ऐसे व्यक्ति कभी अपने जीवन को बना नहीं पायेंगे और उनका ही जीवन नहीं बनेगा तो उनके बच्चों का भी जीवन नहीं बन पायेगा।

इसलिए बंधुओ ! बच्चे का बहुत बड़ा ज्ञान विवेक है। अब हम बच्चे के लिए इतना ही नहीं मानते हैं, क्योंकि माता-पिता की दृष्टि में तो जब तक उनका जीवन रहता, तब तक उसका बच्चा छोटा ही रहता है, लेकिन ध्यान रखना, शास्त्रों में यह भी कहा गया है कि माता-पिता कब तक बच्चों को कैसा मानें ?

नीति शास्त्र में तो लिखा हैं-

लालयेत् पंचवर्षाणि, दशवर्षाणि ताडयेत्।
प्राप्ते तु षोडशे वर्षे, पुत्रे मित्रवदाचरेत्॥

लालयेत् पंचवर्षाणि- यानि लाड़-प्यार प्रेम मुख्यतः पाँच वर्षों तक ही होना चाहिए और 5-10 वर्ष तक की उम्र तक पालन यानि पोषण होना चाहिए। विभिन्न प्रकार की शिक्षा-विद्या-कला और पराक्रम सिखाना चाहिए। इसके उपरांत जब वह बालक 16 वर्ष की उम्र का हो जाये, फिर कहा कि माता-पिता अब उसे बच्चा न माने। फिर तो कहा गया- मित्रवद् समाचरेत्- मित्र की तरह उसके साथ आचरण करें, मित्र की तरह माने तो वह सम्यक्

शांति, न्याय-नीति को जन्म देगी, जिससे वहाँ विभिन्न प्रकार के हर्ष और आनंद होंगे। अन्यथा तनाव, विसंवाद होंगे और एक दिन टूटन-फूटन प्रारम्भ हो जायेगी। इसलिए जो बालक 16 वर्ष का हो गया। अब वह सामान्य बालक नहीं रहा, क्योंकि उसके अंदर बहुत समझदारी आ गई है, ज्ञान आ गया है और यह ज्ञान 16 वर्ष के पहले भी आ सकता है कि पुत्र भी अपने कर्तव्य के विषय में सोचे, विचार करे, समझने का प्रयत्न और प्रयास करे।

कभी सुयोग्य शिक्षकों से, महान पुरुषों से, पुत्र के कर्तव्यों के विषय में सीखने का प्रयास करें। आज स्कूलों में नैतिक शिक्षा का अभाव होता जा रहा है। पुत्र कैसा होना चाहिए, उसके क्या कर्तव्य हैं, पिता के क्या कर्तव्य हैं, ये सारी शिक्षायें नहीं दी जातीं और इन शिक्षाओं के बिना सारा जीवन एक भार, वजनदारी जैसा हो जाता है। क्योंकि रुपया-पैसा शांति नहीं देता और न ही रुपये-पैसे से शांति को खरीदा जा सकता है।

शांति का आधार संस्कार होते हैं। मैं समझता हूँ, प्राचीनकाल की शिक्षा और आज की शिक्षा में इतना अंतर आ गया, प्राचीनकाल में जो शिक्षा दी जाती थी, वह नैतिकता के साथ दी जाती थी, मगर आज की शिक्षा मात्र आजीविका के लिए दी जाती है लेकिन नैतिकता के विषय में व्यक्ति जीरो रहता है और इस ही का परिणाम निकलता है कि आज के विद्यार्थी से जब पूछा जाता है, तुम्हारे पिता का नाम क्या है ? तो वह सीधा का सीधा नाम लेकर बोलता है, गुलाबचंद और अधिक से अधिक होगा तो गुलाबचंद जैन। न श्री, न श्रीमान्, न जी (जैसे शब्दों की कोई शृंखला नहीं रही, न आदरणीय, न पूज्यनीय)।

प्राचीनकाल में जब किसी विद्यार्थी से पूछा जाता था, पिताजी का नाम क्या है ? तो वह बतलाता था मेरे माता-पिताजी का नाम आदरणीय श्री गुलाबचंद जी जैन है। यानि श्री, आदरणीय और जी भी लगाता था। अपने शिक्षक, टीचर के नाम के आगे भी श्रीमान्, आदरणीय आर. के. जैन यानि आदरणीय, पूज्यनीय शब्दों का प्रयोग किया जाता था और प्रायः वह संस्कार छोटी-सी उम्र से सिखाये जाते थे।

स्कूल में एक पाठ आता था कि-

जी-जी करके सबसे बोलो।
श्री-श्री मान करके बोलो।

जी-जी करके बोलना, श्री या श्रीमान् लगा करके बोलना, यह सुयोग्य व्यक्तियों की प्रथम पहचान है, शृंखला है। और बंधुओ ! यह नैतिकता के संस्कार, आश्रम गुरुकुल में दिये जाते थे। आज सीधा नाम लिया जाता और अब तो इतना बिगड़ गया कि डेडी से डेड हो गये और मम्मी से मॉम (ममी) बन गयी।

आप सोचिए, डेड का अर्थ होता है जो मर गया, जीते-जागते को भी आज तुम मार रहे हो, फिर आपके अंदर सम्मान कैसे रहेगा। बंधुओ ! ऐसे लोग यदि जीते में सम्मान नहीं दे सके तो मरे में कभी भी सम्मान नहीं दे पायेंगे। और मम्मी के लिए ममी यानि वर्षों-वर्षों पुरानी बड़े-बड़े महाराजाओं की कब्रों में रखे ममी कहलाते हैं। सोचिये, ऐसी शिक्षा व्यक्तित्व में कैसे निखार ला सकेगी। कैसे उसके अंदर आदर-सम्मान के भाव उत्पन्न कर सकेगी।

इसलिए बंधुओ ! मुझे आज इस विषय में कहने की आवश्यकता पड़ गई और ऐसा लग रहा है कि आज साधु-संतों के हाथों में समाज की बहुत बड़ी बागडोर है। आज गृहस्थों के लिए धार्मिक शिक्षाओं के साथ-साथ नैतिक शिक्षाओं की भी महती आवश्यकता है, जिससे वे अपने कर्तव्यों का पूरा-पूरा ध्यान रख सकें। शास्त्रों में पुत्रों के चार प्रकार किये गए हैं- 1. अतिजात, 2. अवजात, 3. अनुजात, 4. कुलांगार।

1. अतिजात- अतिजात का अर्थ होता तो अत्यंत उत्तम हों, जिसके अंदर संस्कार हों, ऐसा सुसंस्कारों से भरा पुत्र अतिजात होता। वह अपने कुल-परम्परा और वंश को दिन दूना और रात चौगुना कीर्तिमान करता हुआ माता-पिता के लिए प्राणपन से समर्पित होता हुआ उनकी सेवा और सम्मान में तथा आज्ञापालन हेतु सब कुछ न्यौछावर करने को तैयार हो जाता है। किसी परिस्थिति में उसको शर्म-संकोच नहीं लगता। अपने भोजन के पहले

माता-पिता के भोजन के विषय में पूछता है, अपने आराम के पहले माता-पिता की आराम व्यवस्था के विषय में पूछता है, स्वयं भूखा रहता, पर माता-पिता को भूखा नहीं रखता। वह कहता कि अब मुझे यह अवसर प्राप्त हुआ है, क्योंकि आप पहले गीले में सोते और मुझे सूखे में सुलाते थे, लेकिन अब मैं गीले में सोऊँगा और आपको सूखे में सुलाऊँगा। इस प्रकार अतिजात पुत्र के अंदर इस प्रकार के उत्तम संस्कार होते हैं, विचारधारायें उत्पन्न होतीं, जिससे उसके जीवन में उत्तम उपलब्धियाँ होती हैं। कर्तव्य की गहराइयों तक पहुँच जाता है और अपने माता-पिता के सम्मान में अपने प्राणों के भी न्यौछावर करने के लिए तैयार हो जाता है। अतः महाराजा दशरथ जिस समय राम के लिए राजतिलक करने वाले थे, सारे नगर में आनंद मनाया जा रहा था। अनेक-अनेक प्रकार से सारे नगर को सजाया जा रहा था, लेकिन एक ही रात्रि में पासा पलट गया। कैकयी, उसी रात्रि में, राजा दशरथ के कोप भवन में पहुँच गई। और जब समाचार राजा दशरथ के लिए प्राप्त हुआ कि महारानी कैकयी कोप भवन में पहुँच गई, राजा दशरथ हाथों के सारे काम छोड़कर रात ही रात में कोप भवन पहुँच गये और महारानी को मनाने में जुट गये। बड़ी कठिनाई से कैकयी ने अपनी निगाहें खोलीं, बोलना प्रारम्भ किया।

बंधुओ ! ऐसी भी नारियाँ होती हैं, जो समय और परिस्थिति की अपेक्षा नहीं रखतीं और अपनी अज्ञानता का परिचय दे देती हैं। रानी ने राजा की मेहनत का ध्यान नहीं रखा और उनके सामने अपनी समस्या उड़ेल दी कि महाराज आपके खजाने में मेरा वरदान अभी सुरक्षित रखा हुआ है। कल चूँकि राम का राज्यतिलक हो जायेगा और आपके हाथ से राज्य चला जायेगा, भरोसा नहीं वह वरदान मुझे पुनः मिल सके या न मिल सके। इसलिए मुझे इस कोप भवन में आना पड़ा।

राजा भी प्रसन्न हो गये और बोले- महारानी ! बहुत सही समय पर आपने हमें सावधान किया, वरदान का स्मरण कराया। निश्चिंत होकर आप वरदान माँग लीजिए। क्या वरदान है, वह आज ही मैं पूरा करने के लिए तैयार हूँ। माँगो, क्या माँगना चाहती हो ?

कैकयी ने कहा- भरोसा नहीं, आप वरदान दे सकेंगे।

राजा ने कहा-

रघुकुल रीति सदा चली आई।
प्राण जाई पर वचन न जाई।।

महारानी यह रघुकुल की रीति है कि आप प्राण दे सकते हैं, पर अपने वचनों को नहीं तोड़ सकते, मोड़ नहीं सकते। जबान के लिए कभी मोड़ा नहीं जाता। राजा का सत्य प्राण होता है। माँगो, तुम क्या माँगना चाहती हो ?

उसने कहा- महाराज ! यदि यह सत्य है कि रघुकुल की रीति अनादि परम्परा से चली आई है कि वे प्राण दे सकते, पर सत्य को नहीं छोड़ सकते। तो मैं वरदान माँगती हूँ - कल का राज्यतिलक राम का नहीं, भरत का हो। दशरथ के हृदय पर बहुत बड़ा वज्रपात हुआ। सारी जगह सूचना-समाचार राम के राज्यतिलक के हैं और यह बदल करके यदि मैं भरत का राज्यतिलक करता हूँ तो विभिन्न प्रकार की प्रश्न शृंखलायें खड़ी हो जायेंगी, लोगों में कई तरह की चर्चायें खड़ी हो जायेंगी।

राजा दशरथ कैकयी को समझाते हैं- महारानी ! यदि भरत के राज्यतिलक की बात है तो कुछ समय के पश्चात् कही होती तो बहुत अच्छा होता, लेकिन उसने एक ही बात कही- रघुकुल रीति......।

ये आपके वचन हैं। जो आज वरदान नहीं देगा, उस पर कल का मुझे विश्वास नहीं कि राज्य राम के हाथ में जाने के पश्चात् भरत के हाथ में आ सकेगा या नहीं। राज्य तो मुझे कल ही चाहिए, राज्यसिंहासन पर कल भरत ही शोभायमान होगा, तभी मैं अपने वरदान के लिए पूर्ण मानूँगी।

राजा दशरथ मूर्च्छा खाकर जमीन पर गिर पड़े- महारानी ! आप एक बार और सोचो। महाराज ! जो सोचना था, वह सोच लिया है। तो ठीक है, मैंने वरदान दिया कि कल सिंहासन पर राम नहीं, भरत बैठेगा। महाराज ! यह वरदान अभी पूरा नहीं हुआ। इसके साथ जुड़ा हुआ दूसरा वरदान है और वह

यह कि, जैन शास्त्रों और हिन्दू शास्त्रों में बंधुओ ! इस विषय को लेकर अंतर है। जैन शास्त्रों में यह उल्लेख मिलता है कि कैकयी ने एक ही वरदान माँगा था, लेकिन राम ने स्वेच्छा से ये समझा कि मेरे रहते हुए भरत राज्य का सम्यक् प्रकार से संचालन नहीं कर सकेंगे, इसलिए वे राज्य त्याग करके वन की ओर निकले थे।

दूसरी जगह उल्लेख मिलता है कि कैकयी ने अपनी यह बात भी रखी थी कि राम के लिए वनवास, क्योंकि बड़े भाई के रहते हुए छोटा भाई राजसिंहासन पर नहीं बैठेगा और बैठ भी जायेगा तो वह शोभा को प्राप्त नहीं होगा और वह अपने कर्तव्य, अधिकार के लिए सम्यक् प्रकार से नहीं पाल सकेगा, इसलिए महाराज राम के लिए 14 वर्ष का वनवास दिया जाये।

बंधुओ ! राजा दशरथ के लिए पहली बात तो स्वीकार हो गई थी, लेकिन दूसरी बात ने तो ऐसा लगता है कि शरीर और हृदय में तो छोड़िये, प्राणों पर ही घात/प्रहार कर दिया हो। प्राणों तक के लिए चोट पहुँचा दी हो। राजा मूर्छित हो जाते हैं क्योंकि जो अत्यंत प्रिय संतान हो, उसके लिए वनवास की बात, दशरथ के लिए इस बात ने बहुत बड़ी समस्या का रूप धारण कर लिया, प्राणघातक समस्या बन गई और हिन्दूशास्त्रों में तो यहाँ तक उल्लेख आता है कि राजा दशरथ ने यह समस्या सुनते ही, भरत का राज्यतिलक किया और राम के वन में जाने के पश्चात् ही उनकी मृत्यु हो गई थी।

जबकि जैन शास्त्रों में उल्लेख मिलता है कि उन्हें वैराग्य हो गया, दीक्षा धारण कर ली। संसार के इस क्षणभंगुर सुख-शांति माया के लिए उन्होंने धिक्कार दिया और उसे हमेशा के लिए त्याग कर दिया था। बंधुओ ! फिर मुड़कर उन्होंने अपने राज्य को नहीं देखा। राम एक ऐसे अतिजात पुत्र थे, उनके लिए बहुत कुछ समझाया गया, मनाया गया, भरत भी उनके चरणों में आकर के पड़े थे कि हे राम ! आपके बिना मैं राज्य का पालन नहीं करूँगा और मेरा राज्यसिंहासन पर बैठना न्यायसंगत नहीं है, इसलिए यह कोई भी स्वीकार नहीं करेगा। यदि अयोध्या की रक्षा और सुरक्षा चाहते हो तो

राजसिंहासन पर आप ही बैठें। जो माँ का वरदान था उन्होंने माँगा, पिता ने दिया, वह राज्य ले करके मैं आपके लिये वापस करता हूँ। सभी के वचन रह जायेंगे, मेरा भी कर्तव्य हो जायेगा, अब आप भी अपने कर्तव्य का पालन कीजिए।

बंधुओ ! राम वन के किसी एकांत स्थान पर बैठते हैं, जहाँ पर भरत-लक्ष्मण-सीता भी उनके सम्मुख थे। राम ने यही कहा- भरत महाराज ! राजा दशरथ हमारे पिता तथा सारी अयोध्या के राजा हैं। राजा का प्राण सत्य होता है। यदि हमारे पिता के सत्य का हनन हो जायेगा तो शायद वह राज्यसिंहासन न तो हमें शोभा देगा, न तुम्हें। इसलिए क्षत्रिय धर्म है कि कष्टों को सहन करके भी राजपुत्र अपने कर्तव्य पालन का पूर्णतया प्रयत्न करते हैं।

महारानी कैकयी को पिताजी ने वरदान दिया, उसे आप और हम स्वीकार करें, पिता की आज्ञा में कोई शर्त या तर्क न रखते हुए, निःसंदेह पालन करना हमारा दायित्व है। और इसी में हमारा यश-उन्नति और उत्थान है। जो संतान अपने पिता की आज्ञा पालन में तर्क-कुतर्क करती है, वह संतान संतान नहीं कहलाती। वह पुत्र, पुत्र नहीं कुपुत्र कहलाता है। क्या हमारे नाम के आगे कुपुत्र लगाना श्रेष्ठ होगा ? भरत निगाहें नीची कर लेते।

बंधुओ ! राम आदेश देते हैं- भरत यही समझ कर राज्य करना कि राम ने 14 वर्ष तक की यह राज्य व्यवस्था तुम्हें सौंपी। भरत ने कहा- भरत राजसिंहासन पर नहीं बैठेगा, राजसिंहासन पर राम नहीं तो राम की चरणपादुका बैठेगी। भरत जंगल से राम की चरणपादुका ले आये, और सिंहासन पर उन्हें रखा तथा राजसिंहासन के राजा राम हैं, भरत उनका सेवक है, इस प्रकार की घोषणा करके अपनी महानता का परिचय दिया और राम ने पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए एक राजपुत्र होकर भी 14 वर्ष तक वन में रहना स्वीकार कर लिया। जिसमें यह शर्त थी कि राम के साथ राज्य की कोई भी सुविधा-व्यवस्था न रहे। राम किसी महलों या रिश्तेदारी में नहीं रहेंगे, वन में रहेंगे। न जाने कैसे माता कैकयी की राम के प्रति ऐसी भावना उत्पन्न हुई कि

ऐसा वरदान माँग लिया। राम किसी रिश्तेदारी या राजमहलों में नहीं गये, वे वन में ही गये।

बंधुओ ! जो चरणपादुका (खड़ाऊँ) थी, वह भी भरत ले गये। अब कँकरीली-पथरीली भूमि में राम नंगे पैर चलते और सारे कंकड़-पत्थर काँटे उनके पैर में चुभते। राम कितनी बार भूखे-प्यारे रहे और जंगल का समय जहाँ न तो बैठने की, सोने की, खाने की, रहने की, बरसात, धूप या ठण्डी की, कोई भी सुविधा नहीं थी राम के पास। जंगल भी आज के नहीं थे, क्योंकि आज के जंगलों में सड़क मिल जाती है, पर पुराने समय का वियावान जंगल, जहाँ पर खूंखार जानवर विचरण करते और ऐसे जंगलों में 14 वर्ष राम ने पिता की आज्ञा पालन में व्यतीत किये।

ऐसे राम थे। कल्पना कीजिए, यदि आज का कोई राम होता तो क्या करता ? पिताजी के लिए दस बातें सुनाता, कोर्ट में स्टाम्प लिखाता, चौकी में रिपोर्ट कराता, न जाने कितने अखबारों में छपवाता। पिताजी की क्या दुर्दशा करता और कैकयी की क्या दुर्दशा करता और न जाने पिताजी के लिए कौन-सी समस्या लाकर खड़ी करदेता।

बंधुओ ! राम कुलांकार नहीं थे, वे तो अतिजात थे और उसे वे पालन करने में प्राणतः जुट गये। वाल्मीकि रामायण में इसके विषय में एक अच्छा श्लोक है। जब राम वन की ओर जा रहे थे तो लोगों ने पूछा था कि हे राम ! आप वन में जाकर क्या करोंगे ? ऐसी पिताजी की आज्ञा से क्या फायदा ? माता के वरदान से क्या लाभ ? तब राम ने उत्तर दिया था-

अहं ही वचनात्र आज्ञा पातेयमपि पावके।
मध्येऽहं विषं तीक्ष्णं पातेयमपि चारणवे ॥

वे कहते हैं कि मुझे अपने पिता की आज्ञापालन करने में भले ही अग्नि में कूद्‌ना पड़े, भले ही मुझे विष भक्षण करना पड़े, चाहे समुद्र की लहरों के बीच कूद्‌ना पड़े, वह स्वीकार है और उसमें मुझे बहुत बड़ा हर्ष तथा खुशी है, लेकिन पिता की आज्ञा उल्लंघन करने में मुझे राजसिंहासन पर उतना आनंद नहीं होगा।

वह मुझे अग्नि की तरह जलायेगा, समुद्र की लहरों के मध्य कसी तरह डुबोयेगा और विष की तरह मुझे जीवन से मार देगा, अपने सत्य का हनन कर देगा। इसलिए मुझे जंगल भी राजसिंहासन है, वही कोमल गद्दी है, राजमार्ग है, वही मुझे सुख-शांति है। ऐसे राम थे, जिन्होंने पिता की आज्ञा पालन में कोई तर्क नहीं किया था और वन की ओर प्रयाण कर गये। ऐसे लक्षणों से सम्पन्न पुत्र, अतिजात कहलाते, उत्तम महान कहलाते हैं।

दूसरे पुत्र होते हैं, अनुजात। अनुजात पुत्र पिता की आशाओं को बना नहीं सकते, तो पानी भी नहीं फेरते। क्योंकि पिता संतान के लिए जन्म देते, उसका भरण-पोषण करते, बड़ा करते, पढ़ाते-लिखाते, एक मात्र इसी कल्पना से कि हमारी संतान, हमारी वंश परम्परा को चलाती रहे। अपने पिता के द्वारा कमाई हुई कीर्ति को, सम्मान-प्रतिष्ठा को बढ़ा नहीं सकता तो कम भी नहीं करता। वह उन पर दाग-धब्बा नहीं लगने देता। मान सकते हैं किसी के पास कला न हो, विद्या न हो, चतुराई न हो, योग्यता न हो कि पिता की धरोधर की वृद्धि कर सके, तो वे कम से कम जितना है उतना जरूर कायम रखते हैं, सुरक्षित रखते हैं।

तीसरे अवजात कहलाते हैं जो एक ऐसी संतान होती है जो प्रायः पिता के द्वारा कमाई हुई सारी कीर्ति को, सम्मान-प्रतिष्ठा को मिट्टी में मिला देती है, और सारे कुल को कलंकित कर देती है। सारे वंश परम्परा की यश पताका के लिए समाप्त कर देती है। वह भी विभिन्न प्रकार के दुर्व्यसनों में आसक्त होकर, यानि जिस कुल परम्परा में कभी शराब नहीं पी जाती थी, वे शराब पीकर माँस भक्षण, अण्डों का सेवन करके और विभिन्न प्रकार के अन्याय, अनीति, अत्याचार करके, कलंक का तिलक लगा देते, बदनाम कर देते, वे अवजात कहलाते हैं।

ध्यान दीजिए, अवजात नाम के बालक भी कदाचित् किसी दृष्टिकोण से देखा जाय तो आज जो इनकी अवस्था बनी है, वह एक मात्र माता-पिता के संस्कारों की कमी या उनके प्रमाद से बनी है। जब बच्चा गलत संगति में जाने

लग जाता और उसी समय माँ उसके लिए कंट्रोल कर देती तो शायद उस बालक की यह हालत न होती। एक दिन हमने देखा था, पेन्सिल चोर बच्चे के लिए डाकू बन जाने पर जब सूली पर चढ़ाया गया था, तब उसने माँ का कान काटा था। उसने यही कहा था कि माँ यदि पहले मुझे रोक देती तो मेरी यह आज हालत नहीं होती।

महात्मा गाँधी बेरिस्टरी की परीक्षा देने विदेश जाने लगे, तो वे पहले अपनी माँ के पास पहुँचे। चरण छूये, आशीर्वाद लिया और कहा, माँ मैं विदेश जा रहा हूँ। कुछ सीख करके आऊँगा, उनकी माँ उनके लिए आशीर्वाद देती है और कहती- बेटा, विदेश जाना, पढ़कर आना, बहुत अच्छी बात है लेकिन ध्यान रखना वहाँ कहीं मांस-अण्डे नहीं खाना, कहीं शराब नहीं पीना, वहाँ के गलत संस्कार लेकर नहीं आना।

ये माँ के संस्कार हैं, आज की माँ यह संस्कार नहीं दे पाती, पहली बात तो बच्चा ही अपनी माँ के पास नहीं आ पाता, उसको यह पता ही नहीं कि मुझको माँ का भी आशीर्वाद लेना चाहिए, उससे पूछना चाहिए, आज्ञा लेनी चाहिए।

बंधुओ ! जिस बच्चे के लिए संस्कार न हों, वह माँ के पास क्यों आयेगा, क्यों कहेगा, वह तो अपनी पत्नी से कह देता, और चला जाता है, क्योंकि संस्कार नहीं दिये गये, संस्कार की बहुत बड़ी कमी रही। माँ के हृदय पर कैसा आघात लगता है, जब बेटे की पत्नी माँ से कहती, हमारे स्वामी विदेश गये हैं।

काश ! वह बालक माँ के पास जाकर कह देता, तो माँ का हृदय कितना फूल जाता, आनंद-हर्ष से भर जाता। महात्मा गाँधी की माँ ने एक ऐसे संस्कार दिये कि तुम वहाँ से इसी तरह सुयोग्य होकर आना।

आज देश के सैनिक जब अपनी माँ से मिल करके जाते हैं, तो प्रायः वीर-प्रसूता माँ, बच्चे के लिए आशीर्वाद देती है- बेटा ! देश, समाज, धर्म के लिए तू कभी पीठ नहीं दिखाना। इतनी मेरे खून की कीमत करना, इतनी मेरी लाज रखना और बच्चा सीना तान करके कहता- माँ, आपकी आज्ञा अवश्य

इसी तरह पालन करूँगा। गाँधी जी भी ऐसे ही थे। उन्होंने कभी माँस-अण्डे भक्षण नहीं किये, शराब नहीं पी। एक बार ऐसी स्थिति आ गई कि महात्मा गाँधी बीमार हो गये, तो डॉक्टरों ने कहा इन्हें अण्डा खाना पड़ेगा तो उन्होंने कहा था- मरना मंजूर है, पर अण्डा नहीं खा सकता, क्योंकि अपनी धार्मिक संस्कृति का हनन करके हमने जिया तो उससे क्या फायदा ? धर्म के साथ मरना मुझे मंजूर है, पर अधर्म के साथ जीना मंजूर नहीं। ये माँ के संस्कार थे।

जिस माँ ने अच्छे संस्कार दिये, उसके ऊपर यह प्रभाव पड़ता है, लेकिन बंधुओ ! जिसे वे संस्कार ही न मिले हो, तो वह संतान इतनी बिगड़ जाती है कि सारे कुल के लिए कलंकित कर देती है, जगह-जगह चर्चायें होती कि फलाने घर में लोग शराब पीते, माँस खाते, अण्डे खाते और ऐसा व्यक्ति चौका लगाना चाहे तो क्या वह लगा सकेगा ? नहीं।

और आँसू वह माँ भरेगी तथा सोचेगी कि मेरे घर में एक ऐसा बेटा आया, जिसके कारण चौका नहीं लगा सकते, पूजा नहीं कर सकते। उस वंश परम्परा में कितना दुःख होता, जहाँ ऐसे पुत्र होते हैं। सोचिये, उस माँ के विषय में जो धार्मिक लोगों के बीच में बैठने में संकोच करती है। दुनियाँ के लोग उसे ताने देते हैं- माँ ! अपने बेटे को नहीं समझाती, ऐसे ही संस्कार दिये तुमने ? आज तक प्रयत्न-प्रयास नहीं किया।

बंधुओ ! सुनकर रह जाना पड़ता, कितनी वेदना उस समय उसको होती होगी। उसके परिवार के, घर के लोग भी ऐसे शब्द बोलते तो उसके लिए बहुत बड़ी चोट लगती है। इसलिए बंधुओ ! कभी कोई ऐसा कार्य नहीं करना, जिससे आपके लिए अवजात पुत्र का रूप धारण करना पड़े, क्योंकि अवजात कुलकलंकी होता है, कुलदीपक नहीं।

चौथे प्रकार का वह पुत्र है, जिसे कुलांकर कहा गया, यानि कुल का अंगार, कुल को अंगाल की तरह जलाने वाला हो, सारे परिवार के जीते-जीते लोगों के लिए जलाने वाला हो। कंस, काष्टांगार, कुणिक एक ऐसे कुलांगार हुए कि जिन्होंने अपने माता-पिता के लिए सुख-शांति नहीं दी, तो कोई बात

नहीं, पर उनके लिए कष्ट के शिकंजे में खड़ा कर दिया। कंस के विषय में सुनने में आता है कि वह ऐसा व्यक्ति हुआ, जिसने अपने माता-पिता के लिए भी बंदी बना दिया था। जैनशास्त्रों में कुणिक का उल्लेख मिलता है कि वह राजा श्रेणिक बिम्बसार का एक ऐसा पुत्र हुआ था, जिसने अपने माता-पिता के लिए जेल में डाल दिया था। कुछ ऐसे भी पुत्र होते हैं, जो अपराध स्वयं करते, लेकिन उसकी सजा सारे परिवार-कुटुम्ब को भोगनी पड़ती है।

महाराज आज तो उनका सारा परिवार बंद हो गया। मैंने कहा- क्या हुआ ? उसके बेटे ने किसी की हत्या कर दी थी और उस हत्या में सभी का हाथ पाया गया। किसी ने कहा- हमारे घर में एक ऐसी बहू हुई, जिसने आग लगा ली और उसका यह परिणाम निकला कि सारा परिवार जेल में बंद हो गया। फाँसी लगा ली और सारे कुटुम्ब-परिवार की कहानी लिख करके चली गई, सारा परिवार बंद हो गया। ये कहलाते हैं- कुलांगार जो स्वयं भी दुखी तथा सारे लोगों को भी दुख प्रदान करने वाले होते हैं। माता-पिता को कष्ट देने वाले होते हैं।

जब हम लोग कारंजा में थे। वहाँ के सज्जन मेरे पास आये और आकर आँसू बहाने लगे, मैंने पूछा- क्या हुआ दादाजी ? उन्होंने कहा- महाराज ! कुछ न पूछो मेरी व्यथा को। क्यों ? उन्होंने कहा- आज मेरे बेटे ने मेरी कॉलर पकड़ ली और मारने के लिए तैयार हो गया। मैंने पूछा- क्यों ? उन्होंने कहा- वह जुआ खेलता था, उसने पैसा माँगा, मैंने नहीं दिया तो उसने मेरी कॉलर पकड़ ली, पैसा देना पड़ेगा और नहीं दोगे तो मैं तुम्हें मार दूँगा। ऐसी भी संतान होती है।

एक बार की एक और घटना घटी थी। एक पिता ने अपनी इकलौती संतान की शादी, बड़े धूमधाम से, ठाठ-बाट से, हर्ष-खुशी के साथ की। सारी सम्पदा, जायदाद उसकी शादी में लगा दी। उसके उपरांत उसकी पत्नी घर आई। पत्नी तो पढ़ी-लिखी थी लेकिन पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित थी, विभिन्न प्रकार की सुख-सम्पन्नताओं से प्रभावित थी।

पत्नी ने आते ही देखा, सारा काम मुझे ही करना पड़ेगा, उसने अपने

घर पत्र लिखा- मैं इतना काम नहीं कर सकती, इसलिए पिताजी मेरी सेवा-व्यवस्था में नौकर जरूर भेज दें।

बंधुओ ! पिता ने नौकर भेज दिये और अब तो पानी भरने के लिए नौकर लग गये, कपड़े धोने की वॉशिंग मशीन आ गई, आटा पीसने के लिए चक्की आ गई, लकड़ी-चूल्हा कर कौन धुएँ में आँखें खराब करे, इसलिए गैस-स्टोव आ गया। सुना है, अब तो भोजन बनाने की मशीन भी आ गई। भोजन मशीन से तो बनाया जा सकता है, लेकिन ध्यान रखिए, मशीन से खाया नहीं जाता। और वह तुम्हारे भोजन को पचा नहीं सकेगी, पचाना तुम्हें ही पड़ेगा।

पुराने समय में लोग बीमार कम होते थे, जबकि आज प्रतिशत अधिक है, क्योंकि पुराने समय में लोग मेहनत अधिक करते थे, आज के समय में मेहनत कम है। यही कारण है आज व्यक्ति बीमार अधिक है। किसी के लिए गैस की, किसी के लिये रक्तचाप की, कोई हार्ट पेशेंट है, कोई शुगर का पेशेंट आदि अनेक बीमारियाँ हो रही हैं। क्यों ? मुख्य कारण है आरामी जीवन।

वह एक ऐसी ही पत्नी थी। शादी तो हो गई, आराम प्रारम्भ हो गया। हर कार्य के लिए नौकर लग गये, कुछ समय पश्चात् उसके यहाँ पुत्र हुआ। उसका पति, एक पितृभक्त पति था। ऐसा बेटा था, जो समझता था कि पिता ने हमको पाला-पोसा, बड़ा किया तो मेरा कर्तव्य है कि पिता को भी अपने घर बुला लें। उसने गाँव से उन्हें घर बुला लिया और अपना कर्तव्य समझ कर उनकी सेवा सम्भाल की। पत्नी ने शुरू में तो हाँ कर दिया, बाद में सिरदर्दी प्रारम्भ कर दी कि रातभर खाँसते रहते हैं व जहाँ-तहाँ थूक देते हैं। सारी जगह मक्खियाँ भिनभिनाती हैं। पिताजी को यहाँ बुलाकर आपने अच्छा नहीं किया।

बंधुओ ! पति अब क्या करे ? पत्नी की सलाह और उसके दबाव में तो रहना उसके लिए कठिन था, लेकिन उसके अनुसार चलना पड़ रहा था। तकलीफ स्वयं ने बाँधी है। इसलिए पत्नी के अनुसार उसके लिए नाचना पड़गया, उसके इशाने पर चलना पड़ गया, उसने अपनी वीरता खो दी, स्वाभिमान-पराक्रम तथा स्वयं के ज्ञान को खो दिया। क्योंकि जो पत्नी के

चक्कर में आता, पत्नी उसके लिए नाचती है। समझदार व्यक्ति इसलिए अपने कर्तव्य का निर्णय अपने विवेक से लेते हैं। सुनते सब की पर, निर्णय स्वविवेक से करते, लेकिन वह ऐसा पुत्र था, उसे इतना विवेक नहीं था।

पत्नी ने कहा- अच्छा हो, पिताजी के लिए किसी अंदर वाले कमरे में रख दिया जाए, वहीं सारी सुविधा-व्यवस्था हो जायेगी। उसने ऐसा ही किया, क्योंकि पिताजी पत्नी की स्वतंत्रता में अवरोध हो रहे थे, इसलिए उन्हें एक कमरा निर्धारित किया गया।

योगायोग वह कमरा भी ऐसा था, जो उनके शयन कक्ष के बगल में ही था। उनके लिए श्वांस, दमा की बीमारी थी, जिससे वे रात में खाँसते और बुढ़ापे में नींद वैसे ही नहीं आती, चाहे जब लाइट खोल करके बैठ जाते, अब पत्नी के लिए परेशानी अधिक होने लगी, क्या किया जाये, पुनः आग्रह किया पिताजी के लिए ऊपर की मंजिल पर रोक दिया जाये, वहीं सारी व्यवस्था हो जायेगी।

पुत्र ने कहा- उनको सीढ़ी से उतरने-चढ़ने में परेशानी होगी, उसने कहा- वहाँ भोजन भेज दिया जायेगा, सारी सुख-सुविधायें वहीं पर कर दी जायेंगी। पति ने कहा- परेशानी अपने को भी होगी कि पिताजी को कब क्या आवश्यकता हो, उतरना-चढ़ना पड़ेगा। तो पत्नी ने कहा- उनके पास एक घण्टी रख दी जायेगी, जब आवश्यकता होगी तो वे घण्टी बजायेंगे और नौकर जाकर देख आयेगा, समाचार लायेगा, आवश्यकता पड़ेगी तो हम जायेंगे अन्यथा यही रहेंगे।

बंधुओ ! वह पुत्र एक ऐसी समस्या में उलझ गया कि आखिर में उसे पत्नी की बात माननी पड़ी और नहीं मानता तो बहुत किस्म की समस्याएँ। अशांति छा जाती, यह सोच बेटे ने अपने पिताजी की वैसी ही व्यवस्था कर दी, कमरे में घण्टी रख दी गई। पिताजी के लिए आवश्यकता होती तो वे घण्टी बजाते, बेटा आज सिर दर्द कर रहा है, आज पैर दर्द कर रहे हैं, आज भोजन नहीं पचा, आज ठण्डी लग रही है।

बंधुओ ! नौकर नियुक्त थे। जो पिताजी कहें, वही करते रहना, घण्टी

जिस समय बजती, तब वहाँ कोई ना कोई व्यक्ति पहुँच जाता था। एक दिन ऐसा हुआ बेटे का बेटा खेलता हुआ ऊपर चला गया और खेलते-खेलते दादीजी की घण्टी उठाकर ले आया और उस समय उसका बेटा किसी कारणवश बाहर चला गया, पत्नी को समझा गया था कि पिताजी का ध्यान रखना, समय-समय पर पानी-भोजन की पूछना, तकलीफ, परेशानी हो तो दूर करना। पत्नी ने हाँ कह दिया, पर दादाजी के पास अब घण्टी भी नहीं थी। बजायें भी तो कैसे बजायें, स्वास्थ्य बिगड़ा, ठण्डी का मौसम था, शीत लहर के कारण, शरीर में शीत बैठ गया और सारा शरीर जकड़ गया, काफी प्रयत्न किया आवाज लगाने का, पर तीसरी मंजिल से उनकी आवाज नीचे नहीं आ रही थी। खोजने पर घण्टी भी नहीं मिली और अंत में जाकर वेदना के कारण तड़फते-तड़फते उनकी मृत्यु हो गई।

दो-तीन दिन हो गये। चौथे दिन बेटा वापस आकर सबसे पहले पूछता है कि पिताजी का स्वास्थ्य कैसा है ? वे ठीक हैं क्या ? पत्नी ने कहा- मुझे नहीं मालूम। अरे ! आपको मालूम होगा, भोजन-पानी देने तो गये होंगे ? नहीं, मैं नहीं गई थी, फिर कौन गया ? हमने तो घण्टी के लिए छोड़ दिया था कि जब वे घण्टी बजायेंगे तो हम वहाँ पहुँच जायेंगे, घण्टी तो बजी ही नहीं।

वह बेटा तुरन्त पिताजी के पास पहुँचा। वहाँ तो अब कुछ भी नहीं था, एक मिट्टी रूप शरीर, शव के रूप में पड़ा हुआ था। बंधुओ ! पति-पत्नी एक-दूसरे को देखते और अंत में जाकर के दोनों आँसू बहाते रह जाते।

कहने का तात्पर्य यह है कि आज की शिक्षा है, आज के बेटे की यह परम्परायें हैं, आज की पुत्रवधू के ये संस्कार हैं जो अपने माता-पिता का इस प्रकार से ध्यान रखती है। ध्यान दीजिए, यदि आपने अपने माता-पिता के प्रति ऐसा व्यवहार किया है तो आगे आपके लिए भी तैयार होना पड़ेगा। क्योंकि आपकी देखने वाली संतान, आपके इन्हीं संस्कारों को सीखेगी और आपके साथ वैसा का वैसा ही व्यवहार करेगी।

जय बोलिये, 1008 महावीर भगवान की.... !

***

5. सुख-शांति की जननी सास-बहू

बहू सास के लिए माँ की तरह देखे और सास भी बहू के लिये पराई बेटी नहीं, दूसरे की बेटी नहीं, बल्कि अपनी ही बेटी समझे, मानें तो बंधुओ ! जहाँ यह बात बैठ जाती है वहाँ हर्ष, खुशी छा जाती है, किन्तु जहाँ यह बात नहीं बैठती वहाँ विसंवाद-विवाद खड़े होते हैं।

बंधुओ ! बड़ा आश्चर्य होता है कि आचार्यों ने परम स्थानों में गृहस्थ को रखा है लेकिन गृहस्थ के साथ विशेषण जोड़कर रखा है कि सद्गृहस्थ ही परम स्थान का पात्र होता है। सद्गृहस्थ यानि सम्यक् प्रकार से जिसका आचरण होता है, जिसका व्यवहार अच्छा होता है। जहाँ धार्मिक संस्कार होते हैं। जहाँ घर में प्रातःकाल से ही प्रभु भक्ति से गुंजायमान होता है, सुबह का प्रारम्भ भगवान के नाम मंगलाचरण के माध्यम से होता है।

बंधुओ ! उस घर में आनन्द ही आनन्द बरसता है। वहाँ पर सहज मात्रा में धार्मिकता के साथ नैतिकता, सदाचार और शिष्टाचार आता है, कल प्रवचन में देखा था कि गृहस्थ के साथ गृहणी कैसी होनी चाहिए। ठीक इसी से मिलता हुआ आज हमारा विषय दूसरा है और वह यह है कि गृहणी जिस घर में आ जाती है, तो उसका प्रथम परिचय, घर की मुख्य सदस्या सास से होता है, सास के विषय में यदि यूँ कहें कि एक माँ होती है जो शरीर को जन्म देती है तो यह दूसरी माँ जिसके माध्यम से उसका जीवन गुजरता है। और यह एक ऐसी माँ है कि जिसे पराई या मात्र नाम की माँ नहीं कहा जा सकता।

बंधुओ ! शादी हो जाने के पश्चात् कन्या का सम्पर्क माँ से कम और सास से अधिक हो जाता है। इसलिए हमारी संस्कृति में उसके लिए दूसरी माँ की उपमा दी है। वह दूसरी माँ है, जिस कुटुम्ब परिवार में आप रहेंगे, जिसमें आपका सारा जीवन व्यतीत होगा, तो उस परिवार में आपके पति की जो माँ है वह आप की भी माँ है लेकिन जब माँ का दृष्टिकोण पाता है तो फिर सास-बहू

के झगड़े शायद घर-घर की कहानी बन गये, घर-घर में विसंवाद का स्थान, अशांति का स्थान बन गये हैं।

अतः परिवार में तनाव का स्थान बना है तो एक मात्र सास-बहू के झगड़े से। अधिकांशतः ऐसे परिवार हैं कि जिसमें, बहू की सास से नहीं बनती, सास की बहू से नहीं बनती, जहाँ पर सास-बहू में भेद रहता है, भेद ही कई बार मतभेद के रूप में खड़ा हो जाता है। सास कैसी भी क्यों न हो इसका चयन बहू बहुत बाद में कर पाती है जबकि बहू का चयन सास को शादी होने के पहले ही करना होता है, बेटे की शादी के पहले यदि सास उसे व्यवस्थित ढंग से देखती है, तो बाद में उसके लिए उलाहना न मिलती उसे कहने अवसर नहीं मिलता कि यह बहू कैसी है।

शादी हो जाने के उपरान्त, बहू घर में आ जाने के उपरांत सास की सारी शिकायतें व्यर्थ हो जाती हैं इसलिए मैं कहता हूँ- शादी हो जाने के उपरांत शिकायत समाप्त हो जाती है। और शिक्षा प्रारम्भ होती है क्योंकि शिकायत और शिक्षा में बहुत बड़ा अंतर होता है, शिकायत में तो यह लिया जाता है कि यदि आप इस संस्कार में ढल सकते हैं तो आप इस घर में आयें, प्रवेश लें यदि नहीं कर सकते हैं तो प्रवेश नहीं है, यह शादी के पहले तय कर लिया जाता है, वह सास भी बहुत अच्छी है कि जो शादी के पहले ही यह निर्णय खुले मन से दे दे, कि हमारा कुलाचार, धार्मिकता, सभ्यता, संस्कृति और मर्यादा के साथ आपको रहना होगा।

बंधुओ ! शिक्षित बहू भी प्रसन्न हो जाती है और वह यह मानती है कि निश्चित वह घर मेरे लिए स्वर्ग के समान होगा, जहाँ पर सास ने पहले ही स्पष्ट शब्दों में संकेत दे दिये हैं। वह घर बहुत संस्कृति से भरा घर होगा, बहू भी इस बात का निर्णय करती, गंभीरता से विचार करती और इसके निर्णय के उपरान्त वह शादी करती है और अपने पति के गृह में प्रवेश करती है क्योंकि बहू पहले से ही सावधान है, समझ करके आई है और वह अब जो भी कदम रखेगी, बड़े संभल कर रखेगी।

बंधुओ ! जो यह निर्णय करके, सोच करके आई है वह सुयोग्य नारी है। वह घर में आकर सभ्यता और मर्यादा के साथ रहेगी। शादी के पश्चात् जब वह बहू घर में प्रवेश करती तो परम्परानुसार सास-ससुर के पैर छूती है और सास-ससुर आशीर्वाद देते हैं कि घर में प्रवेश करें, तुम्हारा जीवन सुखमय बनें, शांतिमान बनें और आप अपने जीवन में उन्नति और उत्थान करें। बंधुओ ! सास बेटी की तरह बहू के लिए आशीर्वाद देती, बेटी की तरह मानती है।

जिस सास ने बहू को बेटी मान लिया, जिसकी दृष्टि में बहू-बेटी एक समान दिखने लगें, वहाँ विसम्वाद नहीं होगा। लेकिन जिस सास की दृष्टि में बहू अलग और बेटी अलग दिखने लग जाये तो वहीं पर लाल झण्डी फहरा रही है, जो खतरे की घण्टी का संकेत दे रही है कि आने वाला समय खतरे का होगा, विसम्वाद का होगा क्योंकि बहू-बेटियों को अंतर की दृष्टि से देखा जा रहा है और फिर सम्भवतः ऐसी सास अपने सास नाम को भी सार्थक नहीं कर पायेगी तथा जहाँ पर यह अंतर दिखेगा वहीं पर आने वाली बहू भी आपको माता की दृष्टि से नहीं देख पायेगी।

बंधुओ ! बहू को बेटी बनाने से पहले, सास को भी माँ बनना पड़ता है। सास को अपना दृष्टिकोण इतना विशाल बनाना पड़ता है कि बहू-बेटी तुल्य दिखने लग जाये। कहीं ऐसा न हो, हमारे जीवन में अंतर आ जाये और आज कल देखा जाता है- बहू कितना भी काम करें, लेकिन सास यही कहती है बहू कुछ भी नहीं करती, बेटी कुछ भी काम न करें लेकिन सास की उलाहना रहती है, जबसे बिटियाँ आई है वह खाली नहीं बैठी, दिन-रात काम करती है, इतनी मेहनत करती है, अब तुम आराम करो।

बंधुओ ! सास के मुख से बेटी के लिए यह शब्द निकले कि तुम आराम करो, क्या कभी बहू के विषय में ऐसे शब्द निकले कि तुम भी आराम करो। यदि बहू के लिए ऐसे शब्द निकले कि बेटा, आराम करो, थक गये होंगे, मेहनत करते-करते तो सास धार्मिक दृष्टिकोण से सास कहलाने की अधिकारिणी है अन्यथा नहीं है और ऐसा समझ लेना, वह सम्यक्दृष्टि नहीं है और न उसके

लिए धार्मिक और न संस्कारवान् कहा जा सकता, क्योंकि उसके अंदर नैतिकता नहीं है, इतना बड़ा अंतर कि जो प्रातःकाल से सायंकाल तक काम कर रही है और तुमने उसका बिल्कुल ध्यान नहीं दिया और शायद जिसने बिल्कुल भी काम नहीं किया, थोड़ा ही काम किया, उसकी दुहाई तुमने सारे मुहल्ले में गाई, यह बहू के प्रति किया गया बहुत बड़ा अन्याय है। उसने इस बात की परख नहीं की।

बहू भोजन करे और सास उसके लिए उलाहना दे। जब देखो खाने के लिए तैयार रहती है, काम-धाम कुछ करती नहीं और बिटिया कुछ भी नहीं खाती, आज उसने कुछ भी नहीं खाया, आपने यह अंतर अपने प्रति भी बना लिया, विसंवाद की भूमिका अपने द्वारा ही उत्पन्न कर ली है और यह अंतर आगे भेदभाव को बढ़ाने के लिए तैयार हो गया। इसलिए बहू के लिए वही सम्मान देना सास का प्रथम कर्तव्य है, जो अपनी बेटी के लिए दिया जाता है। मानते हैं कभी ऐसा भी हो सकता है कि बहू अशिक्षित हो, संस्कार न हो, कार्य में कुशल न हो, यह सब कुछ संभव है, लेकिन अब शादी हो चुकी है। और शादी एक ऐसा सौदा है, जो वापस नहीं होता, ऐसा सामान है, जिसे पुनः लौटाया नहीं जा सकता।

बिका हुआ माल वापस नहीं होता- यह दुकानों पर लिखा जाता है, चाहे छोटा सामान भी क्यों न हो। तो सोचो जो बहू आ चुकी है और अब वह वापस नहीं होगी। इसलिए बहू कैसी है, ऐसी है या वैसी, इन सारी बातों पर विराम देना होगा, समाप्त करना होगा और इसके पश्चात् सुधार का दूसरा तरीका अपनाना होगा। यह सास की सबसे बड़ी कला होगी, डाँटने से, तिरस्कार से भी सुधार नहीं होगा।

प्रथम तरीका है- बहू को सम्मान देना सीखें। सम्मान देने से सम्मान मिलता है। सम्मान देने से आज तक किसी का सम्मान घटा नहीं, बढ़ा ही है इसलिए जिसने सम्मान देना सीखा है तो समझ लेना उसने सम्मान लेना भी सीख लिया।

जिसने दूसरे का सम्मान किया है वह दूसरों के सम्मान को पचा भी सकता है, लेकिन जिसने कभी दूसरे को सम्मान नहीं दिया, वह कभी भी अपने सम्मान को पचा नहीं सकता, इसलिए सास की पहली विद्या है कि वह बहू का सम्मान करे। सम्मान का अर्थ यहाँ कहीं हार-मुकुट से नहीं, आरती अर्घ्य से नहीं सम्मान का अर्थ कि आपको उसे समझना होगा कि वह नये घर में अपरिचित लोगों के बीच आई है और सोचिए, उसके परिजन साथ में भी नहीं आये, माँ-पिता-भैया-बहिन, न रिश्तेदार आये हैं, वह अकेली है। सहज मात्रा में जब व्यक्ति नये स्थान पर पहुँचता है, तो उसे संकोच-शर्म-डर-भय सहज मात्रा में रहता है और इन सबके बीच में बहुत कुछ मात्रा में बहू से मिस्टेक होती है, इसलिए सास इन सारी बातों को समझे। यह सब संभव हो सकता है, अतः आप बहू को सम्मान दें।

सम्मान का अर्थ है उसकी अपेक्षा रखें, उसकी कीमत करें, प्रेम से बुलायें, बैठाले, उसका ध्यान रखें, बेटा भोजन किया क्या ? पहले भोजन करो, फिर दूसरा काम करना, तुम्हें कोई तकलीफ है, परेशानी है, बोलो, मैं भी तुम्हारी वही माँ हूँ जो तुम्हारे घर में थी। कोई भी तकलीफ हो तो तुम निसंकोच होकर बोलो, जितना होगा मैं पूर्णतः तुम्हारी तकलीफ दूर करूँगी, जैसी मेरी अन्य बेटियाँ हैं उनमें से एक तू है, अपने लिए अलग मत समझना।

जहाँ सास के ये शब्द बहू के कान में पड़ेंगे तो बंधुओ ! बहू का सही मात्रा में श्रद्धा, समर्पण अपनी सास के प्रति वैसा ही होगा जैसा उसका अपनी माँ के प्रति था, यही व्यवहार होगा और शायद माँ से भी अधिक तुम्हारे प्रति आदर, समर्पण का भाव रखेगी, सेव-सहयोग का भाव रखेगी। इसलिए बंधुओ! सास का यह लक्षण है कि बहू को सम्मान, आदर दें, उसका आदर करना सीखें, तिरस्कार करना नहीं, तिरस्कार में तो तनाव, कुण्ठाभाव खड़े होंगे, विसंवाद-विवाद होंगे और तिरस्कार आगे जाकर अपनी सीमा को तोड़ देगा, सम्भवतः अखण्डता को खण्ड में बाँट देगा, इसलिए सम्मान देना सीखें। यह

सम्मान प्रथम कर्तव्य है, तरीका है और जिस सास ने बहू के लिए सम्मान दिया है, वहीं से प्रारम्भ होगी नवीन जीवन की शुरूआत।

यदि कहीं कोई त्रुटि बहू से हो रही है, तो फिर सास दूसरे तरीके को अपनाती है, मर्यादा पहले बना लेती है। बेटा यह काम ऐसा नहीं, ऐसा करना है, यह इस तरह से किया जाता है। चार लोगों के सम्मुख उसकी कमी न बतलायें, उसके दोष न बतलायें, लेकिन अवसर पर उसको समझाती रहें। सास के अंदर एक विशालता, सहिष्णुता होना चाहिए कि कदाचित् बहू से कोई गल्तियाँ हो जायें, कार्य असफल हो जाये, तो सास सहनशीलता का परिचय दे और यह सोच ले, ये कार्य उससे ही नहीं, हमसे भी बिगड़ सकते थे, इन कार्यों में हम भी असफल हो सकते थे और बनना-बिगड़ना यह सहजतायें हैं लेकिन हम उसको एक बार समझायेंगे तो निश्चित है आगे बहू से कोई बिगाड़ नहीं होगा। हर कार्य में उसको सफलता मिलेगी, अतः तत्कालिकता में सहिष्णुता का परिचय दें।

मान लीजिए, कोई काँच का गिलास था। वह बहू से गिरकर टूट गया। चाहे अब वह सास क्षमा का परिचय दे या आवेश-रोष का परिचय दे, मारपीट से लेकर तानाशाही का कोई भी परिचय दे, लेकिन बंधुओ ! अब उससे यह गल्ती हो गई। फूटा हुआ गिलास जुड़ेगा नहीं, जुड़ भी जाये तो शायद उस रूप में नहीं आ सकता जिस रूप में था। इसलिए सास का यह प्रधान कर्तव्य है कि अपने ज्ञान से इस समय धैर्य दिला दें, क्योंकि जिससे काम बिगड़ता है उसको पहले सहज मात्रा में चोट लगती है, उसको दुःख होता है, स्वयं अंतरंग में उसको वेदना होती है। जिस बहू से गिलास फूट गया है तो पहले चोट तो उसको लग चुकी है, जिससे वह इतनी घबरा चुकी है कि शायद वह आपके सामने आने का साहस न कर सके, शायद वह अपनी निगाहें ऊपर न उठा सके।

संभवतः इतनी चोट उसके लिए लग जाती है कि बाहर से आँसू निकलें या न निकलें पर अंदर में आँसू बह जाते हैं। एक चोट लगी है और कहीं दूसरी चोट तुमने उसको दे दी, तो निश्चित है जले में मिर्ची की तरह, ही आप सिद्ध

होंगे। यह आपकी दया का नहीं निर्दयता का परिचय होगा। बंधुओ ! उस मौके पर आवश्यक है कि सास बहू के लिए सांत्वना मिला दे कि बेटा, कोई बात नहीं गिलास फूट गया, फूट जाने दो, घबराओ नहीं, लेकिन आगे ध्यान रखना, सावधान रहना, अब ऐसी गलती नहीं करना।

बहू तुरन्त हाथ जोड़ लेगी, प्रसन्न हो जायेगी और आगे के कार्यों को बहुत सावधानता के साथ सम्भल कर करेगी। जिससे उसके कार्य अच्छे हो जायेंगे। तो वह सास सहिष्णुता के साथ प्रशंसा की भी पात्र होगी, एक प्रशंसा का अर्थ चाटुकारिता भी है और एक प्रशंसा का तात्पर्य सभ्यता भी है। जहाँ पर स्वार्थ के साथ प्रशंसा की जाती है, समझ लेना वह प्रशंसा प्रशंसा नहीं, अपने प्रयोजन को सिद्ध करने का तरीका है और उसके लिए साहित्यिक भाषा में चाटुकारिता कहा है। यह कोई सम्यक् तरीका नहीं, यह तो छल ही है, प्रशंसा के नाम पर।

बच्चा जब णमोकार मंत्र सुनाता, और गुरुजन उसके सिर पर हाथ रख देते हैं तो उसका उत्साह बढ़ जाता और वह सहज मात्रा में कहता है- महाराज ! कल भी हम णमोकार मंत्र सुनायेंगे। एक बच्चा दो दिन भगवान के दर्शन करने मंदिर गया और उसके पिता ने उसकी पीठ ठोक दी, बहुत अच्छा बेटा है हमारा, बहुत अच्छा किया। राजा बेटा खुश हो जाता है- पिताजी ! अब मैं रोज मंदिर जाऊँगा।

प्रशंसा ने बहुत बड़ा स्थान दे दिया, कि एक दिन सिर पर हाथ रखने का परिणाम कि वह रोज मंदिर जाने लगा। एक दिन बच्चे ने आहार दिया। माँ ने उसकी प्रशंसा कर दी- हमारा बेटा बहुत अच्छा है, आहार दिया है, रात्रि-भोजन, आलू, प्याज का त्याग किया है, बहुत अच्छा किया। उसने एक दिन का त्याग किया और कालांतर में वह अनेक दिन का त्याग करने को भी तैयार हो जाएगा।

देखो ! उसकी प्रगति दिन पर दिन बढ़ती जाएगी। सम्मान और प्रशंसा गुण कहे गये हैं, दुर्गुण नहीं। यदि आपने बहू की प्रशंसा करना शुरू किया,

ध्यान रखना, बहू कभी तुम्हारी बुराई नहीं करेगी, निंद्रा नहीं करेगी, प्रशंसा ही करेगी और साहित्यकारों ने तो इतना लिखा है- **वचनेषु का दरिद्रता**- अच्छे वचन बोलने में क्या दरिद्रता रखना। यदि किसी के लिए अच्छे, प्रशंसात्मक दो शब्द बोल दिये, तो अपना क्या गया। उसका हर्ष बढ़ गया, खुशी-सम्मान बढ़ गया। उसके लिए ही नहीं, बल्कि अनेक लोगों के लिये तुमने खुशी बाँट दी है।

इसलिए प्रशंसा यह दूसरा गुण कहा गया है और इसके उपरांत है सहयोग की भावना। जहाँ सहयोग की भावना होती है वहाँ काम कई गुनी मात्रा में सहज हो जाता है। सहयोग की भावना से चार गुना काम कराया जा सकता, असहयोग की भावना में तो सम्भवतः अपना सगा बेटा भी साथ नहीं देता, क्योंकि असहयोग की भावना है। ऑर्डर, आदेश से काम नहीं चलता। यदि बहू खाना बना रही है और सास उसके सम्मुख पहुँच जाये। बेटा ! मैं भी सहयोग करूँगी। मात्र इतना, जब सास कह देती है तो बहू के अंदर से सहज शब्द निकलेंगे कि नहीं, माँ ! मैं तो हूँ, मैं बना लूँगी, आप तकलीफ न उठायें।

बंधुओ ! काम भी हो गया, उत्साह भी बढ़ गया। उसकी उपलब्धि यह निकली कि प्रेमभाव परस्पर में कई गुनी मात्रा में बढ़ गया। आदर-सत्कार की भावना बढ़ गई। जिस घर में ऐसी सास होगी, उस घर की बहू अपने घर भी जायेगी तो अपनी माँ से यही कहेगी कि लगता है, मेरा बहुत बड़ा पुण्य था कि दोनों घरों में एक ऐसी माँ मिली, कि जब इस घर में आई थी तो यहाँ भी संस्कार मिले और जब उस घर में गई तो हर्ष और आनंद मिला। शिक्षा-सहयोग, खुशी मिली। वह आपके गुणगान गायेगी, लेकिन जिस सास ने मात्र आदेश देना सीखा, बंधुओ ! समझ लेना, वहाँ तो समस्या ही समस्या है। दो-तीन बार पालन हो सकता है, अंत में उलाहना प्रारम्भ हो जाएगी और मर्यादायें जब टूट जाती हैं तो विवाद प्रारम्भ हो जाते हैं, इसलिए आचार्यों ने कहा- उस मौके पर सहयोग की भावना रखिए।

आज आप दूसरों के लिए सहयोग दे रहे हैं आगे आने वाला कल भी

ऐसा रहेगी कि वह तुम्हारे लिए भी तैयार रहेगा। जिसने दूसरों को सहयोग देना सीखा है, समझ लेना, उसने दूसरों को सहयोग नहीं दिया बल्कि अपने आपको सहयोग दिया है। एक बार राम से किसी ने पूछा– कि हे राम ! जब अयोध्या से आप वनवास की ओर गये थे तो आपके साथ मात्र तीन लोग थे- राम, लक्ष्मण और सीता। इनके अलावा चौथा कोई नहीं था, लेकिन जब आये तो बहुत बड़ी सेना लेकर आये। आखिर यह सहयोग मिला ? क्या आपने किसी से माँगा ?

राम ने कहा– न ही प्रार्थना की ? न ही याचना की ? फिर क्या बात है? राम ने बहुत अच्छा उत्तर दिया। पहले मैंने सबका सहयोग किया था तो विपत्ति के आने पर इन सबने हमारा सहयोग किया है। जिसने हर्ष–खुशी के समय, दूसरों का सहयोग किया है। बुरे दिनों में तुम्हारे लिए वे सब लोग सहयोग हेतु जुट जायेंगे। स्वस्थ अवस्था में सास का सहयोग किया तो आपकी अस्वस्थावस्था में, सास अस्वस्थ भी होगी तो उठकर आने का प्रयास करेगी और यदि उठ भी न सके तो भी आपके दुःख व दर्द को समझेगी, सहानुभूति प्रदान करेगी, इसलिये सहयोग देना भी सास का प्रधान कर्तव्य है। सहयोग के साथ–साथ और भी बिगाड़ आ जाये तो बहू की कमियों को भी समझने की शक्ति रखे, समझाने के पहले समझना भी महत्त्वपूर्ण है।

समझाने से भी महत्त्वपूर्ण कई गुनी मात्रा में समझना होता है, जिसने समझना सीख लिया, समझ लेना, उसने समझाना भी सीख लिया। समझना पहला सक्षण है। बहू की समस्याएँ क्या हैं, परिस्थितियाँ क्या हैं ? बिना समझे आदेश बेकाम होते हैं, व्यर्थ होते हैं, खाली जाते हैं अथवा उलाहना के साथ बाहर लौटकर वापिस आ जाते है, सिरदर्दी के साथ आते हैं। इसलिए सास का यह भी एक कर्तव्य है कि वह समझने–समझाने का प्रयास करे, बहू की समस्या क्या और कैसी है, जिसने यह समझ लिया, उस घर में शांति और आनंद होगा।

क्योंकि सारी शिक्षायें, योग्यताएँ पहले सास ने प्राप्त कर ली। ऐसे घर में

यदि कोई बहू पहुँचेगी तो वह भी हर्ष–आनंद को ही बरसायेगी। अगर सास अशिक्षित, लोभी, लालची और क्रोधी है तो बंधुओ ! आज दिन–प्रतिदिन प्रायः विसंवादों के मध्य में बहुओं की अधिक समस्याएँ देखी जाती हैं और उसमें यह सुना जाता है कि किसी बहू ने फाँसी लगा ली, आग लगी ली और प्रचार यह होता है कि स्टोव फट गया इसलिए बहू खत्म हो गई। जितने भी स्टोव फटे, प्रायः बहू के ही स्टोव फटे, कभी सास का स्टोव नहीं फटा, स्टोव भी क्या मतभेद करता है ?

बात को छिपाने का तरीका है जबकि पाप को छिपाने से पाप घटता नहीं और बड़ा हो जाता है, और आगे भयंकर रूप धारण कर लेता है।

इसलिए बंधुओ ! बात छिपानी नहीं चाहिए, बात तो समाप्त करनी चाहिए और कैसे हम उसके लिए नष्ट कर सकते हैं। उसके तरीके और सलाह को सोचना चाहिए। स्टोव का बहाना बनाने से तुम्हारे पाप समाप्त नहीं होंगे, छिपाने से पाप कहीं समाप्त नहीं होंगे। आज ये सारे स्टोव फटते हैं, समस्याओं के कारण, लेकिन इसका अर्थ यह भी नहीं कि सारे अपराध मात्र सास के ही रहते हैं। यह भी सत्य है कि कभी–कभी बहुओं के भी बहुत बड़े अपराध रहते हैं। आज की पाश्चात्य संस्कृति, संस्कारों, विभिन्न प्रकार की पुस्तकों, संगतियों (विभिन्न प्रकार) से प्रभावित लड़कियों के अंदर नैतिकता, धार्मिकता बिल्कुल नहीं रहती।

जो अपने माता–पिता के कंट्रोल में नहीं रह सकीं, संस्कार में नहीं रह सकी, ऐसी बहू सास के संस्कारों में क्या रहेगी। जिसने बचपन में संस्कार नहीं सीखे अब पचपन में क्या सीखेगी और अब उसमें कैसे आ सकते हैं, उसके अंदर सम्मान की भावना कैसे आ सकती है ? जिस माँ ने अपनी लड़की के लिए लाड़–प्यार में रखकर संस्कार नहीं दिये, समझ लेना उस माँ ने लड़की की जिन्दगी को खतरे में डाल दिया है। उसका जीवन बर्बाद कर दिया है। इसलिए माता–पिता के लिए भी चाहिए, प्रारम्भ में अपनी संतान को सुसंस्कारित कर दें, इतना कि वह लड़की दूसरे घर में जाये तो वही आदर–

सम्मान देना सीखे, जो घर में अपनी माँ के लिए देती थी। सास को माँ समझना सीखें, माँ की तरह व्यवहार करना सीखें। यह बहू का एक दायित्व है, उसके लिए सास में भी माँ दिखने लग जाये और माँ जैसा आदर-सम्मान प्रारम्भ हो जाय, सेवाभाव उत्पन्न हो जाए।

एक बार हम किसी गाँव से गुजरे तो वहाँ संध्याकाल की आनंद यात्रा के समय एक नियम दिया, जितनी भी बहुएँ हैं वे अपनी सास के पैर छुयेंगी, तो बहुत सारे लोग हँसने लगे। पूछा- क्या हुआ ? बोले- सासू के ? महाराजश्री ! पति के तो पैर छू सकती हूँ, पर सास के नहीं छुऊँगी, क्यों ? सासू अच्छी नहीं है।

बंधुओ ! यदि बहू ने सास के पैर नहीं छुए तो सास का आशीर्वाद और प्रेम-शांति भी नहीं मिलगी, इसलिए बहू का यह कर्तव्य है कि वह सास का आदर-सम्मान करना सीखी और आदर देना सीखेगी तो बहुत हर्ष-खुशी मिलेगी। जो दूसरों की सेवा करना सीखेगा तो उसके लिए भी सेवा सहयोग मिलेगा और अंत में जाकर यह सोच कर चलें, कि मैंने सारे घर की जिम्मेदारी लेकर घर में पैर रखा था, सारे घर का कार्य करने का वचन सिर पर रखा था।

आज हमारी सासू है, भरोसा नहीं, कल के दिन वह रहे या नहीं रहे। कल्पना कीजिए यदि कल के दिन वह न रहेगी तो फिर काम तो पूरा करना ही पड़ेगा और जब करना ही है और करना ही पड़ेगा तो क्यों न रहते हुए भी वह काम करने का प्रयत्न करें और वह भी बिना अहसान के अपने कर्तव्य मान कर काम करना प्रारम्भ करें। बंधुओ ! वह घर स्वर्ग बन जाएगा, उस घर में आनंद-शांति बरसेगी।

अंजना एक ऐसी नारी हुई, जिसमें बहू के सारे रहस्य भरे पाये गए, बहू-सास की एक ऐसी भूमिका पाई गई कि एक बार सास ने किन्हीं कारणों से, नासमझी के कारण, बहू के ऊपर बहुत दोष लगा दिये और उसके लिए घर से निकाल दिया। अंजना घर से बाहर निकली जरूर, अपने घर गई तो माता-पिता ने भी स्थान न दिया और भूली-भटकी जंगलों में पहुँच गई, लेकिन कभी यह नहीं कहा कि मेरी सास ने मेरे साथ ऐसा व्यवहार किया है, कभी किसी

पुलिस थाने में जाकर रिपोर्ट नहीं करवाई, कभी कोई कचहरी में जाकर केस नहीं किया। यह आदर्श बहू की भूमिका रही। शास्त्रों में यह उल्लेख है कि सीता राम के साथ वनवास गई, लेकिन सीता ने कभी भी नहीं कहा कि सास कैकयी के कारण हमें वनवास मिला, क्योंकि वह आदर्श बहू थी।

बंधुओ ! आज हमें मात्र इन दोनों अवस्थाओं को जानना है और समझना है फिर समझने के उपरांत हमारा परिवार, अपना घर जैसा हो, हम अपने घर को किस प्रकार सम्यक् बना सकते हैं और निभा सकते हैं। इस रहस्य को अपने जीवन में सार्थक और सफल करना है, तभी हमारा जीवन और परिवार धार्मिक हो सकेगा। उस घर में धर्म की गंगा बहेगी, वहाँ पर आनंद ही आनंद, हर्ष ही हर्ष बहेगा, क्योंकि धार्मिक बहू आई है। कल कहानी आपके लिए सुनाई थी, जिस कहानी के पीछे इतना ही रहस्य था कि बहू ने सारे के सारे परिवार के लिए धार्मिक बना दिया था।

यदि घर का एक सदस्य धार्मिक हैं तो वह प्रेरणा कर अनेक लोगों को भी धार्मिक बना सकता है। भले धर्महीन घर में भी क्यों न पहुँच जाए, अंधकार में भी प्रकाश फैला सकता है क्योंकि उसने स्वयं धर्म के संस्कारों को पाया है। यह परिवार, कुटुम्ब ऐसा है, यहाँ के लोग ऐसे हैं, इतना कहने से काम नहीं चलेगा, अपितु अपना दायित्व क्या है, हम उसे कैसे रास्ते पर ला सकते हैं, यह हमारे लिए प्रथम महत्त्वपूर्ण कार्य होंगे। इनमें हम सफलता दिखायें तो घर धार्मिक बनेगा। यदि पति मंदिर न जाता हो तो चार लोगों के बीच उसकी बुराई करने की अपेक्षा, शायद उतना श्रम आप उनके लिए मंदिर लाने में कर लेंगे तो निश्चित है, वह पति मंदिर आने लग जाएगा।

जितनी मेहनत आप दूसरों के सुनाने में करते हो, अनादर और तिरस्कार में करते हो, उतनी मेहनत यदि अपने घर को सुधारने में करने लग जाओ, सास कैसी है, बहू कैसी है इसकी जितनी दूसरों के बीच चर्चा करते हैं और जितनी ऊर्जा/शक्ति उनके प्रति बुरे विचारों में करते हैं, शायद उतना विचार/चिंतन उनकी अच्छाईयाँ/सुधार करने में लग जाये तो कैसी भी बहू और

कैसी भी सास क्यों न हो, वह धार्मिक बन जाएगी, वह धर्म के पथ पर लग जायेगी। अन्यथा यह संसार है कोई किसी को सुधार नहीं सका, सम्भाल नहीं सका, इसलिए हमारे लिए चाहिए कि पहले हम आदर्शता को सीखें, समझें और आदर्श में अपना जीवन निर्वाह करें।

यदि ऐसे सदस्य घर में आ गये तो घर उज्ज्वल बनेगा, अन्यथा संस्कारहीन बहू घर को बर्बाद करेगी। सबसे पहले विसंवाद करेगी, लड़ाई-झगड़े करेगी और अंत में प्रस्ताव रखेगी कि हमारा न्यारापन होना चाहिए, दूसरा मकान होना चाहिए, सास के पास नहीं रह सकते हैं, यदि सास रहेगी तो मैं नहीं रहूँगी और मैं रहूँगी तो सास नहीं रह सकती।

एक दिन ऐसा आयेगा कि आपके लिए दूसरे स्थान पर निकाल देगी, एक अखण्डता को खण्ड में बाँट देगी और फिर शांति नहीं मिलेगी। एक बार ऐसा हुआ कि एक ऐसी बहू वर्तमान युग की बहू थी, उन्हीं संस्कारों से प्रभावित थी और उसके मन में अपने रूप तथा ज्ञान का बहुत बड़ा अभिमान था। जब से घर में आई, रोज अपने सास-ससुर से लड़ती और लड़ाई करने के बाद ही उसका भोजन पचता था, अन्यथा नहीं पचता था, नींद भी तभी आती थी, जब एक बार लड़ लेती थी।

प्रथम दिन से लेकर एक वर्ष तक उसके पति ने सब कुछ सहन किया। उसने पूछा- आखिर ये रोज-रोज के झगड़े कब तक सहन करेंगे, ये कैसे समाप्त हों, आप बैठकर बतलायें। उसने प्रस्ताव रख दिया कि ये तभी समाप्त होंगे, तभी शांति आयेगी जब हम इस घर को छोड़कर दूसरे घर में जाएँगे, जब तक एक घर में रहेंगे, तब तक शांति नहीं आयेगी।

लड़का तो सीधा था, उसने माता-पिता के उपकारों के विषय में कुछ नहीं सोचा और बहू की बात मान ली। दूसरे नगर में नया घर बन गया और वहाँ पर उनका ट्रांसफर हो गया। बेटा गया, लेकिन सासू ने यह आशीर्वाद दिया कि जहाँ भी रहना सुख-शांति से रहना। मेरे दुःख की परवाह नहीं करना और बहू वहाँ पर भी पहुँच गई, लेकिन वहाँ लड़ने वाला कोई नहीं था। लड़ाई

अकेले में तो होती नहीं है और जिसके अंदर ये लड़ाई के संस्कार बैठ गए हों। उसके लिए दूसरा न मिले तो समय काटना कठिन हो जाता है। दीवार से लड़ाई की नहीं जायेगी, कहीं किसी वस्तु से तो झगड़े नहीं हो जायेंगे। वो परेशान थी। जैसे-तैसे उसके दिन गुजर रहे थे। एक दिन उसने उपाय खोज लिया, उसने अपने पति से कहा, मेरा पेट बहुत दर्द कर रहा है। पति ने कहा- मैं अभी डॉ. वैद्य को बुलाता हूँ। सभी ने देखा, औषधि दी, लेकिन पेट दर्द ठीक नहीं हुआ, क्योंकि वास्तव में पेट दर्द नहीं कर रहा था।

पेट दर्द का तो एक बहाना था, फॉरमैल्टी थी। वास्तविक दर्द हो तो दवाई काम करें, दर्द ही न हो तो दवाई क्या काम करेगी। उसका पेट ठीक नहीं हुआ। पति को बड़ी चिंता थी, बार-बार पत्नी से पूँछता है- क्या किया जाये कि आपका पेट ठीक हो जाए। अनेक मंदिरों-तीर्थस्थानों पर, अनेक संतों के पास, अनेक लोगों के पास गये। अनेक मंत्र-तंत्र की प्रक्रिया कर ली, लेकिन उसका पेट ठीक नहीं हुआ। पत्नी एक दिन बोलती है, देखो, आज रात्रि में मुझे एक सपना आया था, क्या सपना आया ? सपने तो प्रायः सभी को आते हैं और हर किस्म के स्वप्न आते हैं, हर व्यक्ति को स्वप्न सुनाने की भावना और जिज्ञासा भी रहती है, उसके पीछे उस रहस्य को भी सोचने-समझने का भी प्रयास करता है, फल क्या होगा ? उपाय क्या होगा ?

उसने पति को स्वप्न सुनाया कि एक देव मेरे पास आया, उसने मेरी पीड़ा को देखा और पूछा तू क्या चाहती है ? तो मैंने इतना ही कहा- मैं अपना पेट दर्द दूर करना चाहती हूँ। देव ने कहा- वह तभी ठीक होगा, जबकि तुम्हारी सास सिर मुड़ा कर, काला मुँह करके तुम्हारे घर आ जाये। इतना बोला और अदृश्य हो गया। मेरी आँख खुल गई, मैंने देखा- यहाँ कोई देव नहीं है। और रात्रि के अंतिम पहर का स्वप्न कभी खाली नहीं जाता तो पति ने पूछा, क्या करना चाहिए ? अब तो आप ही जानो, क्या करना। दर्द तो हमारे लिए है, हम ही अनुभव कर सकते हैं कि कितना है ? कैसे ठीक हो सकता है ? अब वह उपाय करो।

पति बेचारा भोला जरूर था पर भोंदू नहीं था, उसने अपने विवेक से काम लिया। जिस माँ ने मुझे पाला-पौसा, छोटे से बड़ा किया, पढ़ाया-लिखाया, अपने पैर पर खड़ा किया, क्या माँ के लिए यह समाचार भेजूँ कि मेरी पत्नी का पेट दर्द तभी ठीक होगा, जबकि आप अपना सिर मुड़ाकर तथा काला मुँह करके हमारे घर आ जायें, यह तो नहीं हो सकता। पहली गलती तो मैंने यह की, अपने माता-पिता को छोड़कर आया हूँ, और दूसरी यह दुर्दशा करूँ, यह संभव नहीं।

फिर भी उसने इस बात को अपने ज्ञान, विचार, अंतरंग में रखा और एक पत्र लिखा- आपकी रानी बिटिया के लिए रात्रि के स्वप्न में देव आया है, देव ने उसको पेट ठीक करने की विधि बतलाई कि यदि सास सिर मुँजाकर, मुख काला करके प्रातःकाल आ जाये तो उसका हमेशा-हमेशा के लिए पेटदर्द ठीक हो जायेगा और यह पत्र उसने अपनी माँ के पास नहीं, बल्कि लड़की की माँ के पास भेज दिया।

जब लड़की की माँ ने उस पत्र को पढ़ा तो वह विह्वल हो गई। एक ही बेटी थी, लाड़ली थी। कौन माँ होगी, जो अपनी बेटी के दुःख दूर करने में तत्पर न हो। माँ ने सोचा, सिर मुड़ाने में क्या दिक्कत है, फिर बाल आ जायेंगे। लड़की तो ठीक हो जायेगी। पहले दिन बतलाया था, माँ की ममता बहुत बड़ी होती है। जिस ममता के सम्मुख फिर और किसी वस्तु की कीमत नहीं होती। माँ तुरन्त सिर मुड़ाती, कोयले से मुख काला करती और प्रातःकाल ही उस नगर के उस मकान में पहुँच जाती, जहाँ पर उसकी बेटी रहती थी। पहुँचते ही उसने दरवाजा खटखटाया, खोलो।

पति और पत्नी आवाज सुनते हैं। पति ने आवाज लगाई- कौन ? मैं माँ ! हाँ और पति आगे बढ़ता है। बहू भी तैयार है, नाटक शुरू कर देती, पेट अधिक दर्द कर रहा है, दर्द अधिक बढ़ गया है, तकलीफ अधिक हो रही है।

पति आश्वासन देता है- ठीक, अभी ठीक हो जाएगा। दरवाजा खोलता है, माँ आ गई। तुम्हारा दर्द अब ठीक हो जायेगा। वो देखो, सामने से माँ आ

रही है। बहू देखती है कि सिर मुंडा और मुँह काला है। जब केशलोंच हो जाते हैं तो महाराज भी पहचान में नहीं आते। यदि व्यक्ति के बाल बन जायें तो उसका चेहरा पहचान में नहीं आता और फिर महिला, जिसके मुड़े और मुँह काला हो तो पहचानना बहुत कठिन हो जाता है।

अब तो माँ, बहू के सामने आकर खड़ी हो गई और वह न पहचान पाई कि यह किसकी माँ है। बहू बोलती है-

देखा वीर वाणी के चाले, सिर मुंडे मुख काले।

उसको चाहिए था कि लड़ाई-झगड़े शुरू हो, जिससे आराम मिले। वीर वाणी यानि पति। पत्नी के अनुसार चलने वालों की हालत, जिसकी माँ का सिर मुंडा हुआ है, मुँह काला है।

लड़का भी समझदार था, विद्वान् कवि था। उसने भी उसी हिसाब से जवाब दिया- ध्यान से देखो-

देखो, मर्दों की फेरी, अम्मा तेरी है या मेरी।

जैसे ही उस बहू ने ध्यान से देखा- अरे ! यह तो मेरी माँ है। आज यही समस्या है कि हम दूसरे के लिए गड्डे खोदतें, लेकिन गिरते स्वयं हैं, फँसाने का प्रयास करते, फँसते स्वयं हैं। गिराने का, तिरस्कार करने का प्रयास करते, पर संभवतः तिरस्कार दूसरों का नहीं, अपना ही होता है। इसलिए भगवान कहते हैं- तिरस्कार करना बहुत बड़ा पाप है और आदर्श नारियों के लिए शिक्षा देते हैं कि ऐसी बहू बनने की अपेक्षा कुँवारी रहना अच्छा है, लेकिन किसी कुटुम्ब-परिवार में जाकर वहाँ सास-ससुर का अनादर, तिरस्कार करना अच्छा नहीं।

बनना है तो महारानी चेलना की तरह, अंजना की तरह, सीता की तरह बनो, जो दोनों कुलों के लिए हर्ष का स्थान बना दे, खुशी और आनंद की वर्षा कर दे, सारे वातावरण को धार्मिक बना दे, सभी लोगों में धर्म संस्कार जगा दें।

जहाँ पर प्रातःकाल से णमोकार मंत्र का उच्चारण, भक्तामर, भगवान की अर्चना, पूजा शुरू हो जाये, जहाँ पर आहारदान, शास्त्रों का स्वाध्याय, कर्तव्य, परोपकार, सेवा, करूणा, जैसे महान् गुणों का प्रारम्भ हमारे जीवन में हो जाये। तभी वह बहू घर में बहू के रूप में रह सकती है, फिर वह बहू बहू नहीं रहेगी, उस घर में एक अच्छी दिव्य शक्ति की तरह रहेगी, वह भी एक माता का रूप धारण करेगी और वह माता ही नहीं जगत् माता के रूप में धारण करेगी, जबकि दोनों में ऐसी सभी विशेषताएँ हों, हम सभी इन गुणों को धारण करें।

जय बोलिये, 1008 महावीर भगवान की... !

***

यस्यामस्ति सुपत्नीत्वं सैवास्ति गृहिणी सती।
गृहस्याय मनालोच्य व्ययते न पतिव्रता॥

अर्थ- वही उत्तम सह धर्मिणी है जिसमें सुपत्नी के सर्वगुण विद्यमान हो और जो अपने पति की सामर्थ्य से अधिक व्यय नहीं करती है।

***

क्षान्ति योषिति यो सक्तः सम्यग्ज्ञानातिथि प्रियः।
स गृहस्थो भवेन्नूनं मनो दैवत साधकः॥

अर्थ- जो पुरुष क्षमारूपी स्त्री में आसक्त है, सम्यग्ज्ञान अतिथियों की अर्थात् दान-सेवा में अनुरक्त त्यागी व्रतियों में सेवारत और मनरूपी देवता का साधक (वश करने वाला) जितेन्द्रिय है वह निश्चय से साधक है।

***

6. भ्रातृप्रेम से विश्वप्रेम हो

घर को जलाने वाला कोई दूसरा व्यक्ति नहीं होता, घर का ही व्यक्ति होता है, हम इस संबंध को समझे। परस्पर में भाई-भाई के प्रेम को बढ़ायें, जगायें, तब परस्पर में विश्व मैत्री और वसुधैव कुटुम्बकम् के जो सूत्र हैं, वे यहीं से प्रारम्भ होंगे।

बंधुओ ! आज प्रवचन का मुख्य विषय है कि गृहस्थों को कैसे रहना चाहिए ? इस पद्धति परम्परा के मध्य हम आज देखेंगे भाई-भाई को। भाई और भाई, यह शब्द ही अपने आप में इतना मीठा, मृदु, पावन है कि यदि हम विचार करें, तो ऐसा लगता है कि भाई की तरह, हितैषी, सहोदर, स्नेह-वात्सल्य देने वाला कोई नहीं हो सकता। भाई की तरह विश्वसनीय, संरक्षक-रक्षक नहीं हो सकता।

भाई की अपने जीवन में बहुत बड़ी भूमिका होती है। कहा जाता है, जो अपने भाई का नहीं हुआ, वह किसका हो सकेगा, ऐसे शब्द कान में पड़ते तो लगता है, भाईचारे का व्यवहार, प्रेम मात्र अपने भाई में ही नहीं, अपितु सारे विश्व में व्याप्त हो जाता है। लेकिन ध्यान रखना भाईचारे की बातें जितने आसानता से कर लेते हैं, इतना वह सहज नहीं होता। चाहे हम कितने लोगों को भाई बना लेते, भाई कह देते। लेकिन ध्यान देना जो अपने भाई का नहीं हुआ, वह दूसरे को भाई कैसे बना सकेगा। और कैसे दूसरे लोगों में भाईचारे का व्यवहार निभा सकेगा ? ऐसे लोगों का विश्वास कैसा हो सकेगा ?

बंधुओ ! भाई में बहुत बड़ी विशेषता यह होती है कि उनके अन्दर माता-पिता के संस्कार अधिक मात्रा में जागृत होते, उत्पन्न होते इसलिए प्रत्येक भाई के अंदर एक सी अनुभूतियाँ, सहानुभूतियाँ देखी जाती है, क्योंकि माता-पिता ने दोनों बेटों को अपनी गोदी में बैठाल, अपने एक ही हाथ से सिर पर आशीष दिया है। तो बंधुओ ! लगता है माता-पिता के संस्कार उन बच्चों

में आ रहे हैं। प्रारम्भिकता से माता-पिता की भूमिका उनके अंदर आती है कि जहाँ दोनों माता-पिता एक ही प्रकार के संस्कार देते हैं, शिक्षा देते है, यही कारण है कि दोनों में एक जैसा स्नेह जागृत रहता है।

बंधुओ ! कभी एक हाथ से ताली नहीं बजती, सदैव ताली दो हाथों से बजती है। माता-पिता के पश्चात् यदि बालक किसी को जानता है तो मात्र अपने भाई-बहन को, इसके अलावा तीसरे को नहीं जानता। जब किसी बच्चे से कहा जाय, यह मिठाई तुम्हें दी जाए, तो किस-किसको दोगे ? छोटी-सी अवस्था में ज्ञान-समझ कम होती है, तो सबसे पहले वह यही कहता है कि मम्मी को दूँगा, बस। क्योंकि उस समय वह मात्र माँ से परिचित होता है।

बच्चा जब बड़ा होता, तो परिचय पिता से होता, पिता की गोद में जा करके खेलता, तो तब वह कहता है, अब मिठाई, माँ-पिता को दूँगा, इसके अलावा किसी को नहीं दूँगा, क्योंकि उसकी बुद्धि का विकास इतना ही हुआ है, अभी इतना ही पारिवारिक परिचय हुआ है। धीरे-धीरे उसका परिचय और बढ़ता तो भाई-बहन परिचय में आते हैं, माता-पिता के बाद यदि स्नेह जगता तो भाई-बहिन के प्रति जागता है इसलिए भाई की बहुत बड़ी भूमिका बन जाती है। साहित्यकारों ने यहाँ तक लिखा कि माता-पिता की अनुपस्थिति में ज्येष्ठ संतान पिता का रूप धारण करती है।

जिस समय पाँच पाण्डव आश्रम में विद्याध्ययन कर रहे थे, उस मौके पर युधिष्ठिर चिंतित बैठे थे, 'सत्यं वद युक्तं चर'। युधिष्ठिर को ऐसा देख करके अन्य भाइयों को साहस नहीं हुआ कि मैं अपने बड़े भाई से कुछ बोलूँ, क्योंकि उनका स्थान तो पिता-तुल्य है। लक्ष्मण कोई भी काम करते तो राम की आज्ञा-अनुमति से करते थे। आज भी हम देखते हैं जो सभ्य लोग, सभ्य परिवार होते हैं जहाँ पर संस्कार जन्म से ही रहे हैं, ऐसे संस्कारों में पले लोग, पिता की अनुपस्थिति में भाई के साथ वही कर्तव्य निभाते हैं और भाई भी भाई जैसा नहीं, अपितु भाई से बढ़कर पिता की भूमिका निभाता है। जिस घर में पिताजी की मृत्यु हो गई हो।ध्यान दीजिए, उस परिवार का संचालक कौन

होगा ? आप कहेंगे माँ होगी, लेकिन वह भी संचालक नहीं हो पाती, वह मात्र माध्यम होती है, संचालक तो बड़ा बेटा होता है। यह बात अलग है कि जब तक उसकी छोटी उम्र होती है, तब तक प्रधानता माँ की हो, लेकिन अंत में पुत्र के हाथों में ही वह दायित्व आता है। राजसिंहासन पर राजा के पश्चात् पुराने समय में यदि किसी को बैठाया जाता था तो एक मात्र ज्येष्ठ पुत्र को बैठाया जाता था। इसलिए बड़ा बेटा पिता के अभाव में पितृत्व का भाव रखता था। छोटे भाई भी बड़े भैया के लिए पिता-तुल्य स्थान देते हैं, सम्मान देते हैं, उनकी आज्ञा का अनुसरण करते हैं।

जिस घर में इस प्रकार के संस्कार आ जाये, इस प्रकार का बड़े भाई के साथ व्यवहार किया जाये तो बंधुओ ! वहाँ पर आनंद शांति, हर्ष, शांति बरसेगा। पिता का अभाव भी खटकेगा नहीं, लेकिन जिस घर में ऐसे संस्कार न हो। पिताजी भी न हो, और बड़े भाई को पिता-तुल्य स्थान न दिया हो तो बंधुओ ! उस घर का सम्भवतः पूरा का पूरा संहार हो जाता है।

फिर घर के चार भैया एक तरह से, एक रूप से नहीं रह पायेंगे। वे आपस में झगड़ेंगे, विसंवाद करेंगे और अंत में ऐसा भी समय आ सकता है कि वे कौरव-पाण्डव का रूप धारण करेंगे, क्योंकि कौरव-पाण्डव भी भाई ही थे, कभी उनकी आपस में यह भावना उत्पन्न नहीं हुई कि ये हमारे ज्येष्ठ भाई, अग्रज है, अथवा अनुज है। अनुज के प्रति हमारा क्या कर्तव्य होना चाहिए तथा अग्रज के प्रति क्या कर्तव्य होना चाहिए।

शायद ऐसा लगता है उनकी सारी शिक्षाओं में एक पाठ शेष रह गया था, एक पाठ सिखाया नहीं गया था उसका परिणाम यही निकला कि प्रारम्भ से लेकर अंत तक विसंवाद ही विसंवाद बने रहे। अपनी सद्गृहस्थ जीवनचर्या में यह पाठ भी आवश्यक है हम इस पाठ को भी सीखें, कि हम भाई-भाई परस्पर में कैसे रहें ? जन्मतः जिस गोद में पले हो कहीं ऐसा तो नहीं उसी गोद के लिए संकट के स्थान बन जायें, चिंता के, दुःख-तकलीफ के स्थान बन जाये। यह सोचना हमारे लिए बहुत आवश्यक है।

कष्ट में रहना सहज है, अपने माध्यम से अपने माता-पिता को कष्ट देना ठीक नहीं है। लड़ाई हो सकती, विवाद-संवाद हो सकते हैं यह सम्भव है लेकिन उसकी समय सीमा, मर्यादा होती है। भाई, भाई यदि बैर धारण करने लग जायें, कषायों को मजबूती से अपने अंदर रखने का प्रयत्न करें, तो सम्भवतः एक दिन ऐसा आ सकता कि ये युद्ध के स्थान पर खड़े हो जायेंगे, फिर दो पक्ष और अंत में वे एक-दूसरे के खून के पियासे भी बन जायेंगे। भाई-भाई की मित्रता, प्रेम और भाई-भाई की शत्रुता दोनों ने बहुत बड़ा इतिहास रचा है। और यह अंतर आता है हमारी विभिन्न प्रकार की संगतियों से, बाह्य संस्कारों से।

बंधुओ ! माता-पिता ने ऐसे संस्कार नहीं दिये, बाद में ही संस्कारों में अंतर पाया। अब हम बाह्य वातावरण से प्रभावित, एक ही माता-पिता की संतानों में बहुत बड़ा अंतर आ जाता है।

एक बार ऐसा हुआ, एक वियावान जंगल में लकड़हारा लकड़ी काटने चला, और उसे किसी वृक्ष की कोठर में तोते के दो बच्चे मिले। उसने देखा, देखने के उपरांत उठा लिया।

बंधुओ ! छोटे बच्चे किसी के भी क्यों न हो, प्रायः सभी को प्रिय लगते हैं। उनमें सहजता से प्रेम जगता है, उसी प्रकार लकड़हारा भी उन्हें देख करके प्रसन्न हो गया और क्यों न मैं आज लकड़ी का काम नहीं करके इन बच्चों को बाजार में ले जाऊँ, कोई व्यक्ति इन्हें खरीदेगा, तो पर्याप्त पैसा मेरे पास आयेगा, मेहनत से बच जाऊँगा।

लेकिन रास्ते में चलते-चलते वह सोचता है कि यदि मैं बजार में बच्चों को बेचूँगा तो शायद अधिक पैसा मुझे नहीं मिलेगा, यदि मैं इनको राजा के लिए उपहार के रूप में भेंट दूँगा तो राजा हमारा बहुत बड़ा सम्मान, आदर करेगा तथा बहुत बड़ा इनाम देगा। जो बाजार में बेचने से मोल नहीं होता और वह तोते के बच्चों को लेकर राजा की ओर बढ़ गया, राजदरबार के सम्मुख खड़े होकर प्रवेश की अनुमति माँगी। राजा की आज्ञा पाकर, वह अंदर गया

और डरते-डरते उन तोतों के लिए राजा के हाथ में सौंपते हुये प्रार्थना की महाराज ! मैंने, मेरी वंश परम्परा ने आपका नमक खाया है तथा आपने सारे वंश परम्परा की रक्षा की। लेकिन हम गरीब आपके लिए क्या दे सकते हैं और हमारे पास क्या है। आज जंगल में मुझे दो तोते के बच्चे नजर आये, मैंने सोचा इन्हें हमारे राजा के लिए भेंट किया जाये तो पुराना ऋण किसी न किसी मात्रा में कम हो सकेगा और इसी पवित्र भावना के साथ मैं इन्हें आपके पास लाया हूँ।

राजा ने उस गरीब को तथा उसकी भावना को तथा उसके हाथों में तोते के बच्चों को देखा तो प्रसन्न हो गया। वह दोनों तोतों को हाथ में लेता और अपने मंत्री को सौंपते हुए बोला- महामात्य ! इन दोनों को ले जाकर इनका पालन-पोषण करना, रक्षा-सुरक्षा करना, इन्हें किसी प्रकार की तकलीफ न हो। समय पर भोजन आदि की व्यवस्था तुम्हें बनाना है, लेकिन ध्यान रखना, एक तोता रनवास में तथा दूसरा तोता घुड़शाला में रखा जाये। मंत्रियों ने पूछा- राजा इसका रहस्य क्या है ? राजा ने कहा- इसका रहस्य आज तो नहीं, लेकिन कालान्तर में बतलाऊँगा। आज मात्र मेरी आज्ञा का पालन किया जाये।

मंत्रिगणों ने यथानुरूप व्यवस्था की। राजा ने अपने गले का हार उतार करके उस लकड़हारे को दिया। रत्नों का हार पाकर, लकड़हारे को नया जीवन ही मिल गया। उसे ऐसा लगा कि मुझे साक्षात् स्वर्ग मिल गया, इतनी शांति हुई, आनंद आया। घर गया और उसके सारे परिवार में चर्चा का विषय बना, हर्ष-खुशी का विषय बना, झोपड़ी, झोपड़ी नहीं रही, महल बन गया, बहुत बड़ा राजसम्मान उसको मिला। आदरणीय, सम्मानीय बन गया। अब वह लकड़ी काटने नहीं जाता, उसका स्वयं का व्यापार हो गया।

बंधुओ ! ज्ञान और विवेक के अंदर एक ऐसी शक्ति होती है कि यदि हम विवेक से काम करें तो बहुत कुछ पाया जा सकता है और यदि विवेक को छोड़ कर, ज्ञान शून्य होकर काम करें तो बहुत कुछ उपलब्धि हाथ से अपने खो भी जाती हैं। धीरे-धीरे उन तोते के बच्चों का पालन हुआ। जब काफी दिन व्यतीत हो गये, तब राजा के मन में आया, क्यों न मैं उन तोते के बच्चों को देख

आऊँ। सबसे पहले राजा अश्वशाला में गये, जहाँ उसके द्वार पर एक पिंजरे में तोते का पालन हो रहा था, सेवकगण उसकी सुविधा बनाये हुए थे।

तोता राजा को देखता पर समझ नहीं पाता कि यह कौन है ? वह तो जिन संस्कारों के मध्य पला था, वही संस्कार उसके अंदर थे। तोते ने कहा– चल–चल हट, पीछे हट, क्योंकि अश्वशाला में इससे बढ़ करके दूसरे शब्द नहीं मिलते। घोड़ों के पालनकर्ता के मुख से यही शब्द निकलते थे।

राजा को ये शब्द सुनकर बहुत बुरा लगा, एक छोटा-सा पक्षी मेरा इतना बड़ा अनादर कर रहा है। चल–चल हट, पीछे हट। राजा को इतना अधिक क्रोध आया कि उसने तलवार म्यान से निकाल ली, लेकिन मंत्री साथ में थे। निवेदन किया महाराज ! वीर–पुरुषों का यह काम नहीं, कि तुच्छ प्राणियों के ऊपर वे अपनी पराक्रमी तलवार का प्रहार करें, तोता संहार करें।

वीर पुरुष तो वीर व्यक्तियों से लड़ते हैं, छोटे व्यक्तियों से उनकी वीरता की वृद्धि तथा उनके पराक्रम का यशोगान नहीं होता, अपितु उनका पराक्रम धूमिल हो जाता है। इसलिए यह पक्षी हिंसा या सजा का पात्र नहीं। महाराज ! इसमें इसका कोई दोष नहीं, उसने यहाँ जो कुछ सीखा, वही उसके जीवन में आया है। राजा का क्रोध मंत्रियों ने परिवर्तित किया– महाराज ! अपने लिए अभी दूसरे तोते के पास भी चलना है, जिसे आपने मुझे पालने की आज्ञा दी थी। उसका भी यथायोग्य सुविधा–व्यवस्था के साथ पालन हो रहा है। आप वहाँ भी चलिये।

राजा तैयार हुए, पर बेमन से, उनके कदम आगे बढ़े और बिना मन के बढ़ाये हुये कदम बहुत वजनदार होते हैं, फिर भी चलते–चलते रनवास में पहुँच गये, पहुँचते ही दरवाजे पर उन्होंने सोने का पिंजरा टँगा हुआ देखा, जिसमें रत्नों की कटोरी, काजू किशमिश की खीर से भरी रखी थी और यहीं व्यवस्था अश्वशाला में पलने वाले तोते की थी, ठीक उसी प्रकार इस तोते की व्यवस्था थी। राजा बड़ा साहस करके आगे बढ़ता, लगता था पैर आगे बढ़ रहे थे, पर मन नहीं। उन्हें लग रहा था कि पता नहीं, अब यह क्या कहेगा और मेरे सम्मान में बहुत बड़ा धक्का लगेगा।

मंत्रियों ने पुनः आग्रह किया– चलिये ना, पास में चलिये।

बंधुओ ! वह पास में पहुँचते तो तोता कहता– आइये, श्रीमान् जी ! आपका स्वागत है। राजा का उत्साह बढ़ गया, निगाहें पढ़ीं, कान खड़े हो गये और हर्षित होने से चेहरा बदल गया, सारी रूप–रेखायें बदल गईं। अपूर्व शक्ति आ गई, हर्ष का संचार होते ही शरीर में रोमांच छा गया। एक पक्षी सम्मान कर रहा है, आइये....।

बंधुओ ! एक ही माता–पिता की संतान में इतना बड़ा अंतर आ सकता है, यह कोई कठिन बात नहीं, बहुत ही सहज है, और इसका मुख्य कारण है, संगति। जब एक संतान किसी अच्छी संगति में पलती है, तो उसके अंदर अच्छे संस्कार जगते हैं और कहीं दूसरी संतान किसी बुरी संगति में पलती है, तो उसके अंदर उस प्रकार के संस्कार आ जाते, वह उसी प्रकार से हो जाते। कालांतर में पहचानने वालों के लिए बहुत बड़ी कठिनाई हो जाती है। वे यह समझ नहीं पाते कि क्या एक ही माँ की अलग–अलग संतान हो सकती है।

हाँ, इतना बड़ा अंतर आ सकता है। एक पाण्डव बन सकते हैं, दूसरी कौरव बन सकते हैं क्योंकि आपने बच्चे का पालन तो किया, लेकिन उसके साथ यह नहीं देखा कि किस परिवेश में हमारी संतान पहुँच रही है। यदि इतना सोचते–विचारते, तो शायद यह अंतर देखने को नहीं मिलता।

आज हम देखते हैं एक ही घर में भाई–भाई में बहुत बड़े विसंवाद खड़े हो जाते हैं। शादी होते समय नहीं होता और परायेपन की भावना उत्पन्न हो जाती है। उसकी सुख-सुविधाओं की अपेक्षा से भी हो सकता है और आज के समय में ऐसा ही होता है, पुत्र की अपेक्षा से कम, पर पुत्रवधू की ओर से अधिक प्रस्ताव रखे जाते हैं कि हमारे लिए अलग किया जाये।

संपदा के लिए दो भागों में विभक्त किया जाये। यदि उसमें भी कम–बढ़ हो जाये, तो ध्यान रखना, भैया–भैया कभी गहरा माप–तौल नहीं करतें यदि कदाचित् उनकी दृष्टि में यह आ भी जाये तो उनकी इतनी विशाल दृष्टि होती कि आखिर में अपना भाई ही तो है, कुछ अधिक भी पहुँच गया तो भी अंतर

नहीं, और कुछ हमारे पास कम आ गया, तो भी कुछ अंतर नहीं आता। और भैया इतना पिघल जाता है, यदि कुछ ज्यादा आ जाये तो छोटे भैया के पास पहुँचा देता- भैया ! लो यह अधिक आ गया। इसको आप सम्भालो अथवा पिताजी की आज्ञा ऐसी ही है, भैया उसमें न हम कुछ कर सकते हैं, न आप। क्यों अपन छोटी-सी वस्तुओं के कारण अपने सारे स्नेह-प्रेम को समाप्त करें, जन्म से जिस संस्कार में पहले, उसे समाप्त करें।

भैया, जिस माँ ने तुम्हें जन्म दिया, उसी माँ ने मुझे भी जन्म दिया। यदि आपका पराभव होगा तो वह मेरे माता-पिता का ही पराभव माना जायेगा। ऐसा सोच कर, भैया-भैया पर इतना अधिक समर्पित हो जाता है। जैसे लक्ष्मण राम के लिए समर्पित थे। इतना भातृस्नेह जागा, भाईचारा जागा कि लक्ष्मण ने राम के लिए अपनी सारी सुख-सुविधाओं को समाप्त कर दिया, सारे सुखों की परवाह नहीं की। राज्य और कुटुम्ब की भी परवाह नहीं की। लक्ष्मण की भी शादी हुई थीं, रानियाँ थीं, लेकिन जब भैया के साथ चले तो एक भी रानी को साथ न लेके गये। ऐसा नहीं कि राम के साथ चलने का आग्रह सीता ने किया हो और लक्ष्मण की किसी रानी ने न किया हो। ऐसा कभी नहीं हो सकता। वो भी रानियाँ थीं, राजघराने की राजपुत्रियाँ थीं, विदुषी, समझदार थीं। उन्होंने भी आग्रह किया होगा, प्रार्थना निश्चित की होगी, लेकिन लक्ष्मण ने उसको स्वीकार नहीं किया।

लक्ष्मण को कितनी मेहनत करनी पड़ी होगी, उन्हें समझाने, मनाने के लिए कि नहीं, आप घर में रहिए। यदि आप हमारे साथ चलेंगे तो हम अपने भैया की सच्ची सेवा नहीं कर सकेंगे, उनके रास्ते में आने वाले काँटों को नहीं बीन पायेंगे, उन्हें नदी-तालाब से पानी लाकर नहीं पिला सकेंगे, वृक्षों से फल लाकर नहीं खिला पायेंगे।

क्योंकि बंधुओ ! पत्नी के आते ही बेटे में अंतर आता है, तो भाई-भाई में भी अंतर आ जाता है। लक्ष्मण ने कहा- आपको मेरी आज्ञा का पालन करना होगा कि जब तक मैं राम भैया के साथ रहूँगा, तब तक आपको घर में

ही रहना होगा। इतना अधिक स्नेह जागा, पद्मपुराण के अंदर में उल्लेख मिलता है कि राम-लक्ष्मण का भ्रातृस्नेह, उनके भाईचारे की चर्चा, मात्र मनुष्य लोक में नहीं, स्वर्गलोक में भी थी।

एक बार सौधर्म इन्द्र राम-लक्ष्मण के प्रेम की चर्चा कर रहे थे, कि ऐसा नियोग होता है कि नारायण-बलभद्र में बहुत बड़ा स्नेह रहता है और राम-लक्ष्मण का इतना अधिक प्रेम है कि एक-दूसरे के बिना रहना तो दूर, जीवित भी नहीं रह सकते।

दो देवों को यह रहस्य समझ में नहीं आया, उन्होंने सौधर्म इन्द्र से पूछा- आपने ऐसा कहा, कि भाई-भाई का स्नेह अधिक रहता है लेकिन वे एक-दूसरे के बिना न रह सके, ऐसा कैसे हो सकता है। हिन्दू रामायण में उल्लेख है कि इन्द्र ने कहा- जिस समय सीता का हरण हुआ था, राम सीता के संकेतानुसार स्वर्ण-मृग की ओर उसे पकड़ने के लिए दौड़े थे। रावण की सारी माया थी, क्योंकि राम के रहते सीता का हरण करना कठिन था। और जब राम बहुत दूर निकल गये तो रावण को लक्ष्मण के रहते हुए सीता का हरण करना भी कठिन था।

रावण ने एक करुणामयी आक्रन्दन किया- हे लक्ष्मण ! दौड़ो ! मैं विपत्ति में फँस चुका हूँ। लक्ष्मण सुनते हैं कि यह तो भैया का स्वर है। सीता भी सुनती हैं और दोनों घबरा जाते। सीता दौड़ने के लिए तैयार, पर लक्ष्मण मनाते हैं- माँ ! आप यहीं रहें ! मेरे रहते हुए आप नहीं जायेंगी। मैं जाकर देखता हूँ, मेरे भैया के ऊपर कौन-सी विपत्ति आई, जो कि मेरे रहते हुए वह उन्हें ग्रस्त कर ले या हमारे भाई इतना आकुलित हो करुणा आक्रन्दन करने लगे ? हिन्दू साहित्य के अनुसार वे लक्ष्मण रेखा खींच कर आगे निकल जाते तथा रावण अवसर पाकर सीता का हरण कर लेता है। यानि राम की आवाज सुनकर लक्ष्मण दौड़ पड़े।

देवों ने सोचा, इतना अधिक स्नेह है तब तो हम जाकर देखें कि वह वास्तविकता में है कि मात्र आपका यह कहना है। देव राम-लक्ष्मण के उस

स्थान पर आ गये, जहाँ दोनों अयोध्या के राज्य का सुख-शांति से संचालन कर रहे थे। दोनों पास के ही किसी वन में विहार करने के लिए गये थे और वहाँ पर देव ने रूप बदला, और उसी प्रकार की आवाज लगाई- हे राम !

आवाज सुनकर राम खड़े हो गये। ये तो मेरे भाई लक्ष्मण की आवाज है। उसी प्रकार लक्ष्मण को आवाज सुनाई पड़ती- हे लक्ष्मण ! यह शब्द लक्ष्मण के कान में पड़ते हैं। यह तो मेरे भाई राम के शब्द हैं, यह शब्द सुनते ही कि राम की मृत्यु हो गई।

बंधुओ ! लक्ष्मण की मृत्यु हो जाती है। यद्यपि जैन सिद्धांत उसके लिए कहता है, नारायण-प्रतिनारायण का आपस में युद्ध होता है। प्रतिनारायण का संहार तो नारायण करता है, पर नारायण की मृत्यु इस प्रकार के भ्रातृस्नेह से होती है।

राम, लक्ष्मण को खोजते-खोजते, उस स्थान पर पहुँचे जहाँ पर लक्ष्मण का शव पड़ा हुआ था, परिचायक गण उनका उपचार कर रहे थे, उन्होंने देखा विभिन्न प्रकार के वैद्य, हकीम आये, सभी ने देखा और लक्ष्मण शरीर से विदा ले चुके हैं, यह संकेत पाते ही राम का स्नेह इतना जग गया, राम ने क्रोध में आकर सभी के लिए डाँट दिया, भगा दिया, वहाँ से, कहा- तुम्हारा भाई खत्म हुआ होगा, मेरा भाई लक्ष्मण मुझे छोड़कर नहीं जा सकता। मोह जब जगता है तो विवेक को समाप्त कर देता है।

बंधुओ ! बड़ा आश्चर्य है, एक तद्भव मोक्षगामी जीव राम, लक्ष्मण को कंधे पर लेते और कहते हैं- मुझे ऐसे राज्य में नहीं जाना, जिस राज्य के लोग मेरे भाई के लिए मरा हुआ कहें, वे अयोध्या में नहीं जाते। लोग मनाने आते, पर जो भी मनाने का प्रयास करता, उसे डाँट देते, और लक्ष्मण के शव को मनाते, तुम मेरे भैया हो और तुमने मेरे माध्यम से बहुत कष्ट सहन किये। आज कौन-सा बड़ा कष्ट तुम्हारे लिए पहुँचा कि मुझसे इतने रूठ गये, कि मेरे हाथ का भोजन नहीं करते हो, मुझसे बोलते नहीं हो, चलते नहीं हो, मेरी बात सुनो।

कितनी बार वे उसके लिए भोजन कराते, कितनी बार वस्त्र बदलते,

कंघी करते और शव को लेकर आगे-आगे बढ़ते जाते। एक, दो, तीन दिन नहीं, छः माह व्यतीत हो गये, लेकिन राम इस बात को स्वीकार करने क्या, सुनने के लिए भी तैयार नहीं थे।

बंधुओ ! जो दो देव परीक्षा करने आये थे, उन्होंने स्वर्ग में जाकर चर्चा कर दी कि जैसा आपने कहा था, दोनों में उससे ज्यादा स्नेह पाया। राम शव को लेकर अभी घूम रहे हैं। वहाँ देव अपनी विद्या के द्वारा उस स्थान पर आ गये।

अब राम को कौन समझाये, तो देवों ने अपनी विक्रिया से उपाय निकाले। किसी ने रूप बदल कर, पानी को मथना शुरू कर दिया, राम वहाँ से गुजरे तब पानी को मथते हुए लोगों को देख राम पूछते- आप लोग यह क्या कर रहे हैं ?

महाराज ! यह तो आप देख ही रहे हैं पानी को मथ करके मक्खन निकाल रहे हैं। राम कहते- पानी को मथकर मक्खन क्या आज तक निकला है ? नहीं, लोग कहते- महाराज ! यदि पानी को मथकर मक्खन आज तक नहीं निकला तो, मरे हुए व्यक्ति जीवित हो सकते हैं, राम कुपित होकर, आगे बढ़ जाते, मुझे समझाने आयें। देव दूसरा उपाय निकालते, वे पत्थर की शिलाओं के ऊपर हल चलाते, बीज बोने का प्रयत्न करते। राम पूछते- आप क्या कर रहे हैं ?

लोग कहते- महाराज जमीन को जोत रहे हैं और बीज बो रहे हैं ? राम कहते- मूर्खो ! क्या पत्थर पर कभी अनाज बोया जाता है ? क्या पत्थर पर हल चलेगा ? उस पर डाला गया बीज अंकुरित होगा क्या ? लोग कहते- महाराज ! क्या मरा हुआ व्यक्ति जीवित हो सकता है ? राम फिर कुपित हो जाते और आगे बढ़ते।

बंधुओ ! मांगीतुंगी महाराष्ट्र का वह स्थान है, जहाँ से राम का मोक्ष हुआ था। वहीं पर देवों ने बालू को पेलना प्रारम्भ किया। राम ने देखा, पूछा- क्या कर रहे हो ? उन्होंने कहा- यह कोल्हू है हम रेत पेलकर तेल निकाल रहे हैं और तेलको जगह-जगह बेच कर आजीविका चलाएँगे।

राम कहते- बालू का तेल कभी निकलता है क्या ?

महाराज ! सुना तो नहीं, न ही निकाला, पर निकालने का प्रयास कर रहे हैं। राम बोले- ये तुम्हारी अज्ञानता है, बालू से कभी तेल नहीं निकलता। वे कहते- महाराज बालू में से तेल निकलेगा, क्योंकि जब आपके इस शव में आत्मा वापिस आ सकती है, तो मेरे बालू में से तेल निकलेगा।

बंधुओ ! राम के अंदर यह ज्ञान इतनी जल्दी प्रवेश हुआ, मोह का परदा उठा, उन्होंने सोचा- यह तो हमारा बहुत बड़ा भ्रम था। मोहवश हम ऐसा समझ रहे थे, पर सत्य तो यह कि भैया लक्ष्मण की मृत्यु हो चुकी। संसार का नाता चार दिन का होता है, अंत में सबको जुदा होना पड़ता है, कोई किसी का भाई-पिता नहीं, यह हमारी अज्ञानता रही कि शरीर के नाते को हमने अपनी आत्मा का नाता मान लिया।

बंधुओ ! राम सावधान होते, इतने सावधान होते कि अंदर वैराग्य भावना जग जाती, इसके बाद उन्हें तो वैराग्य हो गया था। वे तो आत्मसाधना में डूब गये थे। भाई-भाई के लिए इतना समर्पण कि भाई ने भाई के लिए प्राण दे दिए। बंधुओ ! वे भी एक भाई-भाई थे जिन्हें हम अकलंक और निकलंक कहते हैं, धर्म की रक्षा में निकलंक ने अपने प्राण भी दे दिये थे, और अकलंक ने अपनी प्रतिज्ञाओं का निर्वाह किया था। ऐसा भी भाई-भाई का प्रेम था।

मैंने कहा- यह आवश्यक नहीं कि हर संतान ही संस्कार में ढली हो। ऐसा भी होता है, कि संस्कार के वश, संगति के या वातावरण में परिवर्तन होने से संतान-संतान में अंतर आता है। कौरव और पाण्डव में ऐसा ही हुआ था। कौरव शकुनि के संस्कारों में पलने-पुसने लगे थे, यही कारण था कि कौरवों की पाण्डवों के प्रति कलुषित भावना जागने लगी थी। बंधुओ ! बहुत किस्म के शकुनि हुए, जिन्होंने कैंची का काम करना सीखा है, सुई-धागा बनना नहीं सीखा, अतः शकुनि ने दोनों के बीच कैंची का काम किया था, और आपस में विद्रोह को उत्पन्न कर दिया था, उस बैर-विवाद का जन्म यहाँ से प्रारम्भ हुआ था, और अंत में इतना भयंकर परिणाम निकला, कि महाभारत युद्ध हुआ था।

दो झगड़ों के बीच यदि कोई तीसरा व्यक्ति आता तो वह दो प्रकार का

होता है, एक-दूसरे को जोड़ भी सकता है और दूसरे टूटते हुए को और अधिक तोड़ सकता है। आपस में तोड़ने में अपना पूरा बल-विवेक लगा देता है। शकुनि ने टूटते हुए को तोड़ा था। एक सौ पाँच भाईयों का संगठन तोड़ दिया और विश्व में ऐसा इतिहास रच दिया कि भाई-भाई के बीच राज्य सम्पदा के लिए, अपने-अपने अधिकार के लिए विसंवाद-विवाद किया और भाई-भाई के रिश्ते को तोड़ दिया था।

भरत-बाहुबली का यह एक प्रसिद्ध उदाहरण है। दोनों भाई-भाई एक भवावतारी, एक ही पिता आदिनाथ तीर्थंकर के पुत्र थे। लेकिन इतना बड़ा विसंवाद कि एक-दूसरे को झुकने के लिए, उनकी बात मानने के लिए तैयार नहीं। जहाँ पर भरत का कहना था- बाहुबली तुम्हें मेरा आदेश पालन करना होगा, और बाहुबली कहते- भैया भरत, भैया के नाते तो यह सिर तुम्हारे चरणों में है, लेकिन राजनीति, अधिकार के नाते, तो यह अधिकार मेरा है, मैं झुक नहीं सकता और तब एक-दूसरे को झुकाने के लिए भरत-बाहुबली ने आग्रह किया कि यदि ऐसी बात है तो रणांगन भूमि में खड़े हो जाओ और भरत-बाहुबली की बहुत बड़ी-बड़ी सेनाएँ खड़ी हो गईं। मंत्रियों के लिए बहुत बड़ी चिंता जागृत हो गई कि दोनों तद्भवमोक्षगामी जीव हैं, जिनका विनाश असंभव है, दोनों का कुछ नहीं बिगड़ेगा, बिगड़ेगा तो सेनाओं का बिगड़ेगा। मंत्रियों ने बैठकर सलाह कर, भरत-बाहुबली से प्रार्थना की, महाराज ! युद्ध दो व्यक्तियों का है, दो देशों का नहीं, दोनों ही तद्भवमोक्षगामी, एक ही पिता के पुत्र हैं।

हम सबके लिए तो दोनों का ही सम्मान प्रधान है इसलिए दोनों अहिंसामय युद्ध करें, जिसकी जीत हो, वह राज करे। सारी सेना, प्रजा उसे ही स्वीकार करेगी। भरत-बाहुबली ने इस बात को स्वीकार कर लिया। इतना तो संस्कार था, अहिंसा का, दया का, सोचा, हमारे आपसी विवाद में सेना का विनाश क्यों हो, और दोनों ने अपनी-अपनी सेनाओं को अलग कर दिया। युद्ध की विधि निकाली गई, जिसमें अहिंसक तरीके हो। जय-पराजय का निर्णय अहिंसक तरीके से कैसे हो ? मंत्रियो ने तीन शर्त रखी, एक- दृष्टियुद्ध, दूसरा- जलयुद्ध, तीसरा- मल्ययुद्ध।

पहला था– दृष्टियुद्ध, जिसकी दृष्टि पहले झपके, वह पराजित तथा जो दृष्टि को खोले रहेगा और वीर माना जायेगा, उसकी विजयी मानी जायेगी। बाहुबली भरत से कद में पच्चीस धनुष बड़े थे, भले ही बड़े भईया थे भरत। भरत को ऊँची निगाहें करनी पड़ती थी और बाहुबली को नीची निगाहें करनी पड़ती थीं, दृष्टि युद्ध चला, लेकिन भरत की पलक झपक गई, क्योंकि उतने अधिक समय तक ऊपर नहीं देखा जा सकता, जितने समय नीचे देखा जा सकता था।

नीचे देखने में तकलीफ कम और ऊपर देखने में तकलीफ अधिक होती है, इसलिए पिक्चर हॉल में बालकनी ऊपर होती और थर्ड क्लास सीट नीचे होती है। उसकी कीमत कम, बालकनी की अधिक होती है। आराम की कीमत है। विजय बाहुबली की हुई, घोषणा हो गई, दृष्टि युद्ध में भरत की पराजय तथा बाहुबली की विजय हुई, समस्या और अधिक खड़ी हो गई, क्योंकि चक्रवर्ती की पराजय इतिहास में कभी नहीं हुई और आज बाहुबली के माध्यम से पराजय हो गई।

बंधुओ ! भरत की सेना में उदासी छा गई। उसका भी सारा शरीर फीका पड़ गया, क्योंकि पराजय की वेदना मरने से अधिक होती है, और सामान्य नहीं, चक्रवर्ती की पराजय, सारे संसार में चर्चा फैल गई, कि भरत की पराजय हो गई। भरत ललकार लगाते हैं कि युद्ध तीन थे, दूसरे युद्ध की तैयारी की जाये, दूसरा जल युद्ध था। जिसमें एक-दूसरे पर जल फैंकना था। कौन वीरता के साथ अडिग रहकर सहन कर सकता, कौन घबराता, और पराजयता का प्रतीक था कि जो उससे मुख मोड़ ले तथा वीरता का प्रतीक था कि उसका सामना करें।

बंधुओ ! पहली बारी थी भरत की, बाहुबली ने कहा– तुम मेरे बड़े भाई हो, इसलिए पहले तुम ही पानी उछालो, जितना उछाल सकते हो। भरत ने पूरी ताकत से जल उछालने का प्रयत्न किया, पर सारा जल बाहुबली के कंधे तक ही पहुँचा। अंत में जाकर भरत थक गये, तो बाहुबली ने जल उछालना

शुरू किया। चूँकि बाहुबली शरीर से बड़े थे और उन्होंने इतना जल उछाला कि भरत को सांस लेना कठिन हो गया। अंत में जाकर उन्होंने मुँह के आगे हाथ कर लिए तो भरत की दूसरे युद्ध में भी पुनः पराजय हो गई। तीसरा युद्ध मल्ल युद्ध था, मल्ल तो वैसे ही पहलवान होते, और पराजय का रोष आ जाये तो ताकत और अधिक बढ़ जाती है, अखाड़े में दोनों उतर गये, दोनों सेनाएँ चारों ओर से युद्ध देख रही थीं, कभी नहीं सोचा था कि भरत-बाहुबली का युद्ध होगा। दोनों खड़े हो गये, हर तरफ से दाँव-पेंच लगायेंगे और बाहुबली ने भरत को उठा लिया, भरत के सिर का मुकुट नीचे गिर गया।

बाहुबली कहते– भैया, आप मेरे भैया हो, इसलिए मैं जमीन पर नहीं गिराऊँगा। भाई-भाई का हनन नहीं करेगा, पराजय स्वीकार करो, लेकिन भरत को रोष आया। उन्होंने सुदर्शन चक्र का स्मरण किया और उसे बाहुबली के ऊपर फैंक दिया।

बंधुओ ! भैया इतने बड़े शत्रु का रूप धारण कर सकता है, आदिनाथ के पुत्र ऐसा एक इतिहास भी रच सकते हैं, ये सब कल्पना के बाहर था, पर चक्र तो फेंक दिया गया था। चक्र दिव्य रत्न होते हैं और वे परिवार के लोगों पर वार नहीं करते, संहार नहीं करते। चक्र गया और बाहुबली की तीन परिक्रमा करके वापिस लौट आया। भरत को रोष जगा, बाहुबली को वैराग्य जागा, धिक्कार हो ऐसे राज्य को, जिसके लिए भैया-भैया का शत्रु बन जाये, जिस सम्पदा से भाई-भाई का स्नेह समाप्त हो जाये, जिसके लिए सारी कुल-परम्परा की यश-कीर्ति को समाप्त कर दिया जाये, जिस धन-सम्पदा के लिए न्याय-नीति को समाप्त कर दिया जाये। ऐसे राज्य से मुझे कोई प्रयोजन नहीं।

और बाहुबली भरत से कहते– भैया भरत ! आप पराजय की वेदना, कष्ट का अनुभव न करें, बल्कि पूरे राज्य का संचालन करें। मैं साधना करके आत्मकल्याण करूँगा। बाहुबली ने इतनी बड़ी तपस्या की कि एक वर्ष तक एक पैर के अँगूठे पर खड़े रहे।

चारों तरफ से बेले उनके सारे शरीर पर चढ़ गईं, पक्षियों ने उनके कानों

में घोंसले बना लिए, सर्पों ने पैरों के चारों तरफ वामी बना ली, बड़े-बड़े नाग, छिपकली, बिच्छु जिनके शरीर में विचरण करने लगे, फिर भी वे अपनी साधना में अडिग रहे, पर एक विकल्प के साथ कि मैं भरत की जमीन पर खड़ा हूँ जिससे केवलज्ञान नहीं हो सका। भगवान आदिनाथ की दिव्यध्वनि के अनुसार भरत उनके चरणों में आये और प्रार्थना कि हे महामुनि बाहुबली ! यह धरती किसी की नहीं है और न मेरे साथ आई थी, न मेरे साथ जायेगी। जो मेरे साथ आई नहीं, वह मेरी कैसी हो सकती है, यह मेरा मिथ्या अभिमान था, यह किसी की नहीं है। आप संकल्प-विकल्प छोड़ दें कि यह भरत की भूमि है और यह शब्द सुनते ही बाहुबली को केवलज्ञान हो गया।

कहने का तात्पर्य मात्र इतना ही कि ऐसे भी भाई हुये, जिन्होंने परस्पर में बहुत बड़े युद्ध किये, बंधुओ ! इसलिए कहा गया, हम अपने भाई को पहचाने, अपने कर्तव्य को पहचाने, एक ऐसे संस्कारों में पले-पुसें, जिनसे हम अपने प्रेम-स्नेह, अपनी मर्यादाओं को बनाये रखें कहीं ऐसा न हो कि हम ऐसे संस्कारों में पहुँच जाये, कि स्नेह न रहे। हाँ, वैराग्य जग जाये कोई बात नहीं, लेकिन कहीं शत्रुभाव, बैरभाव में बदल जायें, यह न्यायोचित् नहीं होगा। जिस परिवार में भाई-भाई में विवाद हो जाये तो ध्यान रखना, पड़ौसी आ करके परिवार पर राज्य करेगा।

क्योंकि जिस परिवार में आपसी विवाद खड़े हो जाते हैं, तो दूसरे व्यक्ति उसका फायदा उठाते हैं। लेकिन जिस परिवार में एकता, संगठन रहता है तो ध्यान रखिए कितना भी शक्तिशाली बाहर का व्यक्ति क्यों न हो, सभी उस परिवार से डरते, घबराते हैं क्योंकि एकता-संगठन है। घास के तिनके जब तक एक-एक रहते तो चाहे जो व्यक्ति तोड़ कर फेंक देता है, लेकिन वे सब मिल करके-रस्सा बन जातें, तो वे हाथी को भी बाँध लेते हैं। इसलिए एक प्रार्थना में कहा गया-

भ्रातृ-भावना भुला परस्पर, लड़ते हैं जो प्राणी,
उनके घर में विश्व प्रेम, फिर भरे तुम्हारी वाणी,

सब में करुणा जागे, जग से हिंसा भागे,
पाये शिव सुख साता,
हे दुर्ज ! दुखनाशक, जय हे सन्मति जुग निर्माता
जय हे, जय हे, जय, जय जय, जय हे,
सन्मति युग निर्माता।

कितना रहस्य भरा है। जब छात्रगण इस प्रार्थना को भगवान के समक्ष करते हैं, कि घर में युद्ध न हो, भाई-भाई में युद्ध न हो, तो लगता है भ्रातृ-भावना सभी में जागृत हो गई हो। फिर ऐसे भ्रातृ युद्ध नहीं होते, बल्कि समाप्त हो जाते हैं और ऐसे पावन विचार/भावना उत्पन्न होती है कि-

भाई से जो हो गलती, उसको क्षमा करेंगे।
घर की बुराई हरगिज, बाहर नहीं करेंगे।।
हे वीतरागी स्वामी, नित प्रार्थना हमारी।
अज्ञान को तजे हम बनें ज्ञान के पुजारी।।

कितनी सुन्दर भावना, प्रार्थना के रूप में कही गई- भाई से जो हो गलती उसको क्षमा करेंगे, भाई से गलती होना स्वाभाविक है और गलती तो सभी से सम्भव है, आज दूसरे से होती तो कभी हमसे भी होती है, प्रायः व्यक्तियों को दूसरों की गल्तियाँ देख करके क्षोभ उत्पन्न होता है, लेकिन ऐसा क्षोभ अपने ऊपर करने लग जाये कि यह भी तो हमारी गलती है, मिस्टेक है, पर ऐसा हम कभी नहीं करते।

जितना दूसरों पर रोष करते, उतना यदि अपने ऊपर करने लग जायें तो कभी ऐसा समय नहीं आयेगा कि भाई-भाई में विवाद हो जाये। फिर तो भाई-भाई को सम्मान देगा, आदर देगा और जहाँ भाई-भाई का आदर शुरू हो गया क्योंकि बंधुओ ! आदर घर से ही प्रारम्भ होता, तभी विश्व सम्मान करने के लिए तैयार होता है, और जहाँ घर से तिरस्कार होता वहाँ सारा विश्व तिरस्कार करता है।

क्षमा करें- यदि कभी भाई से गलती हो जाये तो प्रचार नहीं करना, उसे

क्षमा करना, उसकी चर्चा अपनी पत्नी से नहीं करना, क्योंकि पत्नी के पास यदि भैया की चर्चा पहुँच जायेगी तो ध्यान रखना वह उसमें मिट्टी का तेल ओर डालेगी, और सीक लेकर खड़ी हो जायेगी। और उसकी चर्चा कभी मुहल्ले-पड़ोसियों से नहीं करना, अपितु भैया के चरणों में स्वयं जा करके गिर पड़ना और क्षमा माँग लेना। क्षमा एक ऐसा जल है जो दहकती हुई आग को भी समाप्त कर देता है। क्षमा माँगना प्रधान है, श्रेष्ठ है।

बंधुओ ! जैसे-जैसे ज्ञान जगता है, व्यक्ति के अंदर सरलता आती है, व्यक्ति का हृदय उज्ज्वल बनता है। जितना महान् व्यक्ति होगा, बंधुओ ! वह क्षमा माँगने के लिए स्वयं तत्पर होता है। क्षमा बाद में दी जाती किन्तु माँगी पहले जाती है, अतः क्षमा माँगने वाला क्षमा करने वाले की अपेक्षा श्रेष्ठ होता है। जिससे सामने वाला व्यक्ति भी पिघलता है लेकिन पिघलाने का तरीका तुम्हारे पास होना चाहिए। यह तुम्हारी कला होनी चाहिए-

दुनियाँ झुक सकती है, झुकाने वाला चाहिए।

हम यदि क्षमा माँगने लग जायेंगे, तो दुनियाँ हमें भी क्षमा करेगी। ध्यान रखिए, कभी किसी ने अपने बच्चे का नाम विभीषण नहीं रखा। इतना बड़ा संसार है, लोग हैं, फिर भी क्या बात है ? विभीषण तो न्यायप्रिय था, धार्मिक था, उसके अच्छे संस्कार थे, पर अंतर था तो इतना था कि वह घर का भेदी था, इसलिए उसे कुलकलंकी कहा गया क्योंकि जो कुलकलंकी होता हैं, वह घर की बुराई बाहर करता हैं। उनके बारे में कहा जाता है कि-

घर को जला दिया, घर के ही चिराग ने।

घर को जलाने वाला कोई दूसरा व्यक्ति नहीं होता, घर का ही व्यक्ति होता है, हम इस संबंध को समझे। परस्पर में भाई-भाई के प्रेम को बढ़ायें, जगायें, परस्पर में विश्व मैत्री और वसुधैव कुटुम्बकम् के जो सूत्र हैं, वे यहीं से प्रारम्भ होंगे।

जय बोलिये, 1008 महावीर भगवान की.... !

***